01saumya_Layout 1 22-02-2024 15:14 Page 1

पाक शास्त्र और आदर्श राष्ट्र : कुछ दैनंदिन नुस्ख़े

सौम्या गुप्ता

बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में प्रकाशित पाक पुस्तिकाओं को सामाजिक स्रोतों का पद दुर्लभ ही प्राप्त होता है और आम तौर पर अकादमिक दुनिया की बहसों में कम ही अहमियत दी जाती है। यह आलेख इन उपेक्षित स्रोतों के माध्यम से आधुनिकता के मुहाने पर खड़े शहरी मध्यवर्गीय हिंदू परिवार में प्रचलित आम धारणाओं, क़ायदों और आस्थाओं की एक झलक पेश करने का प्रयास है। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में लिखी गई हिंदी पट्टी की लोकप्रिय पाक-पुस्तिकाओं में पकवानों की विधि तो होती ही थी, साथ ही एक सामाजिक और 'राष्ट्रीय' पाक सीमा को खींचने का प्रयास भी होता था; रसोई के नियम, भोज्य-अभोज्य की परंपरा, कच्चे और पक्के की परिधि, शिष्टाचार विधान और आदर्श स्त्रियोचित स्वभाव के लक्षण आदि के निरूपण के द्वारा इन पाक-पुस्तिकाओं ने सम्भवत: बीसवीं सदी के उभरते सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के निर्माण में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

राष्ट्र की कल्पना-प्रक्रिया में लोगों की सांस्कृतिक स्मृति में रचे-बसे खान-पान के रूपक में चिर-परिचित घनिष्ठता की छौंक राष्ट्रवाद के ख़याल को अंतरंग बनाने का काम करती है।

01saumya_Layout 1 22-02-2024 15:14 Page 2

हमारे यहाँ के व्यंजनों और खाद्य परंपराओं की भारी विविधता को देखते हुए किसी प्रतिनिधि भारतीय व्यंजन की धारणा को विकसित कर उसे स्थापित करना, यहाँ तक कि उसकी कल्पना करना भी कोई आसान चुनौती तो थी नहीं। राष्ट्र की कल्पना के दौरान अमूमन दोहरी कोशिश दिखाई देती है : पहले आम दिनचर्या को अनुष्ठान बनाया जाता है और फिर यह दावा किया जाता है कि यह अनुष्ठान राष्ट्र-बोध की पूर्णता के लिए अनिवार्य है। भारत की आज़ादी के बाद विभिन्न प्रकार की क्षेत्रीय और स्थानीय पाक परंपराओं से अलग-अलग व्यंजनों को चुनकर एक वृहद भारतीय भोजन परंपरा तैयार की गई, लगभग उसी तरह जिस तरह अनेक क्षेत्रीय भेदों को अंगीकार करते हुए भारत की संघीय कल्पना अस्तित्व में लाई गई।[1] समाजशास्त्री अर्जुन अप्पादुरै ने इस भारतीय 'राष्ट्रीय व्यंजन' — जो अपनी क्षेत्रीय या जातीय जड़ों को छिपाने की कोशिश नहीं करता — के निर्माण का श्रेय 'उत्तर-औद्योगिक, उत्तर-औपनिवेशिक…घुमंतू, बहुजातीय, बहुभाषी, पश्चिमी आस्वाद में रँगे पेशेवर मध्यम वर्ग द्वारा किए गए बेहिचक पाक परीक्षणों' को दिया है।[2]

राष्ट्रीय भोजन के इस 'सलादनुमा' विवरण से इतर, इस पर्चे का सरोकार राष्ट्र की उस कल्पना से है जो आज़ादी के पहले की हिंदी पट्टी में गढ़ी जा रही थी, और जिसकी एक झलक हमें हिंदी में छपी पाकशास्त्र की लोकप्रिय पुस्तक-पुस्तिकाओं में मिलती है।[3]

पौराणिक आर्यावर्त से उत्प्रेरित, ख़ुद को आदर्श हिंदू धर्म, संस्कृति और भाषा का केंद्र मानते हुए उत्तर प्रदेश हिंदी पट्टी पर एक स्वाभाविक विशेषाधिकार का दावा करता है। गंगा-जमुना दोआब में स्थित यह स्थान, जहाँ वर्ण और आश्रम के मानदंड पूर्ण रूप से मान्य थे, प्राचीन काल से लगातार विभिन्न साम्राज्यों का केंद्र रहा था।[4] चौथी शताब्दी का गुप्त और सत्रहवीं शताब्दी का मुग़ल साम्राज्य इसी क्षेत्र में पनपे। पूर्व-औपनिवेशिक काल में यह अवध की स्वायत्त नवाबी का केंद्र था, जिसकी राजधानी लखनऊ गंगा-जमुनी संस्कृति का संगम क्षेत्र थी। औपनिवेशिक काल के दौरान वाराणसी, मथुरा और इलाहाबाद जैसे प्राचीन शहर यहाँ कानपुर और आगरा जैसे वाणिज्यिक केंद्रों से होड़ लगाते मिलते हैं। लोकप्रिय आत्म-कल्पना में यह क्षेत्र नियमित रूप से स्वयं को 'राष्ट्र का हृदय' होने के नाते ख़ुद पर गर्व करता है। इतिहासकार ज्ञानेश कुदैसिया ने पाँच अलग-अलग निर्मितियाँ इंगित की हैं जिनमें उत्तर प्रदेश को भारतीय समाज और राजनीति के हृदय स्थल के रूप में स्थापित किया गया है : 1870 के दशक में

---

[1] गांधी की भोजन और रसोई से संबंधित बातों में रुचि सर्वविदित है. अपनी निरंतर यात्राओं के दौरान उन्होंने स्वागत समितियों के द्वारा गुजराती व्यंजन उपलब्ध कराने को अनावश्यक माना. हरिजनबंधु के एक गुजराती लेख में गांधीजी ने स्पष्ट लिखा कि 'हममें अपने प्रांत के बाहर के प्रांतों में खाए जाने वाले भोजन को स्वीकार करने की क्षमता होनी चाहिए'. हालाँकि, एक 'राष्ट्रीय भोजन' निर्धारित करने में मौजूद कठिनाइयों को वे खूब समझते थे : 'मुझे पता है कि यह सवाल इतना सरल नहीं है जितना दिखता है... (क्योंकि) न केवल विभिन्न प्रांतों में भोजन परंपरा के अलग-अलग सम्मिश्रण हैं, बल्कि एक ही प्रांत में विभिन्न समुदायों के बीच भी अलग-अलग स्टाइल होती है' 'प्ली फ़ॉर कैथोलिसिटी,' *हरिजन*, जनवरी 5, 1934.

[2] अर्जुन अप्पादुरै (1988) : 3-24.

[3] रुडोल्फ़ ऐंड रुडोल्फ़ (1981) : 811; कुदैसिया (2006) : 9.

[4] रॉय (2009) : 30.

01saumya_Layout 1 22-02-2024 15:14 Page 3

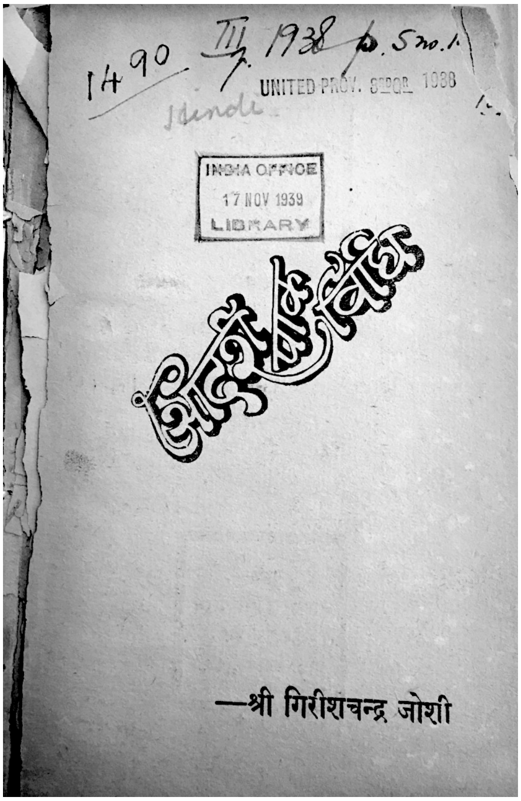

युनाइटेड प्रॉविन्सेज़ (संयुक्त प्रांत) औपनिवेशिक अधिकारियों की नज़र में एक 'मॉडल' प्रांत' था। तदुपरांत यह 'हिंदी, हिंदू, हिंदुस्तान' के दावे और मुस्लिम राजनीति की मुखर अभिव्यक्ति का केंद्र बना।[5] बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में उत्तर प्रदेश के ग्रामीण इलाकों में राष्ट्रवाद का प्रसार हुआ और कांग्रेस के नेतृत्व में यह राष्ट्रीय संघर्ष का अगुआ बना। तब से अब तक उत्तर प्रदेश भारत की राष्ट्रीय राजनीति को गहराई से प्रभावित करता आ रहा है।[6]

बीसवीं सदी का आरंभ हिंदी लेखन के प्रस्फुटन का दौर भी था। इलाहाबाद, लखनऊ, बनारस, कानपुर और आगरा जैसे मुख्य शहर ज्ञान उत्पादन और हिंदी प्रकाशन उद्योग के महत्त्वपूर्ण केंद्र थे।[7] जहाँ बंगाल उन्नीसवीं शताब्दी में देशज भाषाओं के प्रकाशन का अग्रणी केंद्र था, वहीं 20वीं शताब्दी की शुरुआत में उत्तर प्रदेश में देशी भाषाओं के प्रकाशन में ज़बर्दस्त प्रगति देखने को मिली।[8] यहाँ 1926 में पंजीकृत किए गए कुल प्रकाशनों की संख्या 2840 थी। 1931 तक यह संख्या बढ़कर 3565 हो गई, जो एक स्थिर वार्षिक वृद्धि दर्शाती है। प्रांत के कुल प्रकाशनों के आँकड़ों में हिंदी प्रकाशन का हिस्सा 59.2% था। हिंदी किताबत में यह उल्लेखनीय बढ़त इस बात का सबूत है कि हिंदी जन क्षेत्र का तेज़ी से विकास हो रहा था।[9] साक्षरता के आँकड़े भी इस कथन का समर्थन करते हैं। संयुक्त प्रांत में 1921-1931 के एक दशक में साक्षरता में 34.4% की वृद्धि दर्ज की गई। महिला साक्षरों की कुल संख्या 1921 में 134,004 से बढ़कर 1931 में 218,299 हो गई।[10] यह सत्य है कि कुल आबादी का यह एक बहुत छोटा प्रतिशत था और यह संभावित पाठक वर्ग राज्य के क़स्बों और शहरी क्षेत्रों में ही केंद्रित था। फिर भी,

[5] उत्तर भारत में राष्ट्रवाद और साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण के विकास के दस्तावेजीकरण के लिए देखें फ्रांसिस रॉबिन्सन (1974), सुधीर चंद्र (2014), ज्ञानेंद्र पाण्डेय (1990), सैंड्रिया फ्रायटैग (1990) और आलोक राय (2001).

[6] गॉल्ड (2004) : 2

[7] वसुधा डालमिया (1997); फ्रंचेस्का ओर्सीनी (2002); स्टुअर्ट ब्लैकबर्न व डालमिया (2004) : 16.

[8] चारु गुप्ता (2001) : 50; उलरिके स्टार्क (2007).

[9] *रिपोर्ट ऑन द एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ़ द युनाइटेड प्रोविंस ऑफ़ आगरा ऐंड अवध,* 1926-27.

[10] डी. नटराजन, *एक्सट्रैक्ट्स फ़्रॉम दि ऑल इंडिया सेन्सस रिपोर्ट्स ऑन लिटरेसी, 1971*, iii, 89.

01saumya_Layout 1 22-02-2024 15:14 Page 4

औपचारिक शिक्षा की धीमी और असमान प्रगति के बावजूद इस प्रिंट आउट पुट के 'पाठकों' की किसी भी गणना में इस तथ्य को नज़रअंदाज़ नहीं करना चाहिए कि औपचारिक पाठकों के अलावा इन पुस्तकों और पत्रिकाओं को सुनने वाला एक बड़ा वर्ग होता था।।[11]

उत्कृष्ट साहित्यिक प्रकाशनों के साथ-साथ इस दौर में घर और महिला संबंधी अन्तरंग विषयों पर आधारित नैतिक व हिदायती प्रकाशनों की बाढ़ सी आ गई। इन रचनाओं में 'नूतन विचार और विभिन्न शैलियाँ एक साथ नमूदार हुईं, लैंगिक भूमिकाओं की नई संभावनाएँ तलाशी गईं, उनमें संशोधन किये गए, उनको [नई भाषा में] दुहराया भी गया'।[12] जैसा कि चारु गुप्ता ने अपने काम में सविस्तार दर्शाया है, यह पर्चे और पत्रिकाएँ मुख्यतः क़स्बाई क्षेत्रों और शहरों में रहने वाले मध्यम-वर्गीय, उच्च और मध्यवर्ती जातियों के मुखर वर्गों द्वारा रचित थे, और विशेष रूप से दैनन्दिन रिश्तों और कार्यस्थलों में उनकी चिंताओं और नैतिक संत्रासों को प्रस्तुत करते थे।[13] क्योंकि यह साहित्यिक और पत्रकारीय उत्पादन राष्ट्रीय आंदोलन द्वारा उद्घाटित आमूल परिवर्तन के समकालीन था, राष्ट्र व इसके उत्थान का रूपक हिंदी सार्वजनिक क्षेत्र के विभिन्न प्रकाशनों द्वारा संबोधित केंद्रीय विषय वस्तु बन गया।[14] वसुधा डालमिया ने बताया है कि उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से स्थानीय प्रेस में छप रहे अनेक ऐतिहासिक निबंधों और *इंडियन ऐंटीक्वेरी* जैसी पत्रिकाओं ने भी भारत को मुख्यतः हिंदू सभ्यता के दायरे में प्रस्तुत किया और स्थानीय परंपराओं और स्वाद को सांस्कृतिक और ब्राह्मणवादी आदर्शों से जोड़ने का उपक्रम किया। ऐतिहासिक-सांस्कृतिक अवचेतन से सूचित-संचालित इस साहित्यिक परियोजना में 'सभी शैलियों के लेखकों ने प्राचीन साहित्य से सीधा शजरा जोड़ने और वैधता हासिल करने की कोशिश की'।[15] प्रिंट क्रांति और उसके स्थानीयकरण का तत्काल परिणाम यह हुआ कि परंपरावादी व रूढ़िवादी पुस्तकों की पहुँच में इज़ाफ़ा हुआ और धर्म, भाषा, राष्ट्र, और संस्कृति की यकसाँ समझ की परंपरा मज़बूत हुई।[16] 1920 और 1930 के दशक में हिंदी प्रेस में ऐसा कोई विमर्श नहीं था जो राष्ट्र के बारे में न हो, और यह बात हिंदू पाकशास्त्रों पर भी लागू होती है। पाकशास्त्रों, महिला पत्रिकाओं और घरेलू नियमावलियों ने 'महिलाओं के सवाल', 'आदर्श पारिवारिक जीवन' और स्त्री-सुधार जैसे मुद्दों के माध्यम से भावी आदर्श राष्ट्र को भी परिभाषित किया। वस्तुतः 'आदर्श राष्ट्र की कल्पना' परिवार की भौतिक और भावनात्मक देखभाल और पोषण जैसे अंतरंग

---

[11] निझावन (2017) : 48–66.

[12] ब्लैकबर्न और डालमिया (2004) : 16.

[13] चारु गुप्ता (2012) : 1-36.

[14] फ्रंचेस्का ओर्सीनी के हिंदी और उर्दू में वाणिज्यिक प्रकाशन के विश्लेषण में नोट किया गया है कि 'यहाँ पुस्तिकाओं और रंगमंच के द्वारा उत्पादित आनंद के व्यवसायीकरण में ऐसे विमर्श, मुहावरे और बिम्ब शामिल थे, जो राजनीतिक रंग ले सकते थे'. देखें ओर्सीनी (2009) : 1-48.

[15] वसुधा डालमिया (2015) : 110.

[16] वही : 110-138.

01saumya_Layout 1 22-02-2024 15:14 Page 5

धरातल पर ही सम्भव मानी गई। बक़ौल तनिका सरकार, 19 वीं सदी के अंत से, शास्त्र और हिंदू रीति-रिवाजों से मर्यादित स्त्री अतीत की स्वतंत्रता के साथ-साथ एक उभरते राष्ट्र के प्रतीक के रूप में स्थापित की गई। भोजन की सांस्कृतिक स्थापना इसी प्रक्रिया का हिस्सा थी।[17]

हालाँकि, इस स्वघोषित राय के अलावा कि खाना पकाना महिलाओं का स्वाभाविक कार्य था, पकाने की विधि और व्यंजनों के विस्तृत दिशा-निर्देश पर साहित्यिक पत्रिकाओं में ज़्यादा ज़ोर नहीं था। यद्यपि आधुनिक गृह सज्जा, स्वच्छता, आरोग्य, बचत इत्यादि पर सलाह तत्परता से बाँटी जा रही थी, हिंदी पट्टी के प्रमुख रिसालों में व्यंजन, या रसोई के नुस्ख़ों जैसे कॉलम आरम्भ में कम ही दिखते है। 1909 से इलाहाबाद से प्रकाशित *गृहलक्ष्मी* जैसी सफल पत्रिका में भी रसोई या रंधन कार्य सरीखा कोई *नियमित* स्तंभ नहीं था।[18]1920 के दशक से *चाँद* और *माधुरी* में 'दादीमाँ के नुस्ख़े' 'घरेलू उपचार,' जैसे कॉलम कभी-कभार दिखते हैं, और आगे जा कर ये ही 'पाक शिक्षा' के रूप में स्थापित होते हैं। पर ये नियमित फिर भी नहीं थे। यह माना जाता था कि महिलाओं को न तो रोज़ाना का खाना, न ही औत्सविक पकवान बनाना सिखाने की कोई ज़रूरत है। पाक कला तो उनका नैसर्गिक गुण था – जैसे कि बंगाल के एक सुधारवादी पति ने अपनी पत्नी से हतप्रभ हो कहा : 'मैं आपको पाक कला के बारे में क्या सिखा सकता हूँ? खाना पकाने में सिखाने के लिए है ही क्या? इसे तो स्वयं देखकर और पकाकर ख़ुद ही सीखा जाता है।'[19]

मगर इससे यह तात्पर्य नहीं निकालना चाहिए कि हिंदी प्रिंट जगत में खाना पकाने के बारे में कोई सलाह दी ही नहीं जाती थी।[20] यद्यपि महिलाओं की मानक पत्रिकाओं में पाक विद्या को अमूमन कम स्थान दिया गया था, हिंदी पाक पुस्तिकाएँ और व्यंजन विधियाँ सस्ते और 'अप्रबुद्ध' साहित्य की दुनिया का महत्त्वपूर्ण हिस्सा थीं।[21] धार्मिक और पौराणिक साहित्य, यौन निर्देशिका, कविता, सनसनीख़ेज़ उपन्यास और रोमांस, टीका और कथा सरीखी

[17] तनिका सरकार (1999) : 29.

[18] बीसवीं सदी के आरम्भ में *गृहलक्ष्मी* महिलाओं की सफलतम पत्रिकाओं में एक थी, जो पहले वर्ष में ही 4000 सदस्य बनाने में कामयाब हुई. मगर 1924 तक यह संख्या 2000 तक ही रह गई. संभवतः इस कमी का कारण इलाहाबाद की ही एक और पत्रिका *चांद* की बेमिसाल सफलता थी. 1926 में *चांद* की प्रसार संख्या 6000 थी, जो 1930 में 15,000 तक पहुँच गई. देखें, निझावन (2012): 49; ओर्सीनी (2002): 64-65.

[19] देखें धीरेंद्र नाथ पाल, *स्त्रिरेर सहित कथोपकथन*, कलकत्ता, वैष्णव चरण वसाक (1908), जो वॉल्श, *डोमेस्टिसिटी इन कोलोनियल इंडिया*, 55 में उद्धृत है.

[20] बंगाल में विस्तृत निर्देशों से पूर्ण पाक-पुस्तकें 19वीं सदी के अंत से ही प्रकाशित होने लग गई थीं, हालाँकि इस साहित्य का उद्देश्य महिलाओं के पाक-कौशल को ही था, न कि किसी नौसिखिए को आरम्भ से खाना पकाना सिखाना. देखें, बोर्थविक (1984) : 210-216.

[21] चारु गुप्ता का शोध इस बात पर ज़ोर देता है कि 'उच्च और निम्न, अभिजात और लोकप्रिय' साहित्य के बीच एक सरल भेदभाव सम्भव नहीं है. देखें, गुप्ता (2001) : 84. साथ ही उलरिके स्टार्क ने इस वाणिज्यीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से 'मुद्रित पाठ का सांस्कृतिक संपत्ति से सस्ते और आसानी से उपलब्ध उपभोक्ता वस्तु में रूपांतरण के रूप में वर्णन किया है. यह रूपांतरण औद्योगीकरण द्वारा उत्पन्न विस्तृत आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों से गहराई से जुड़ा हुआ है'. स्टार्क (2007) : 4.

01saumya_Layout 1 22-02-2024 15:14 Page 6

स्वदेशी शैलियों की दुनिया में हिंदी पाक पुस्तिकाओं ने अपनी जगह बना ली थी और इनकी अच्छी ख़ासी संख्या में बिक्री भी होती थीं। छपाई-पूर्व की वाचिक दुनिया और परवर्ती छपाई जगत के बीच कोई ऐसी गहरी खाई कभी नहीं रही जो परस्पर आवाजाही को निषिद्ध करती। प्रिंट की दुनिया अपनी परंपरागत सामाजिक, सांस्कृतिक, भाषाई सीमाओं से बँधी रही। बक़ौल स्टुअर्ट ब्लैकबर्न, 'प्रिंट [की आमद से] ज़्यादा किताबें नहीं छपीं, बल्कि पुरानी किताबें ज़्यादा छापी गईं ...लेकिन इन शुरुआती दौर की सभी नई और पुरानी किताबों ने भाषा और साहित्य को लेकर स्थानीय सामुदायिक नज़रिए को काफ़ी हद तक बदल दिया।'[22]

अतः यह पाक-पुस्तकें एक प्रकार से पारंपरिक ज्ञान प्रणालियों का औपनिवेशिक शहरी जीवन की नई माँगों से वार्तालाप हैं – एक ऐसा वार्तालाप जो कि प्रिंट के नए सार्वजनिक माध्यम में मौखिकता की एक पुरानी दुनिया को ला रहा था। इस प्रक्रिया में रवायती रसोई पुनर्परिभाषित होने लगी, उसे नई गतिशीलता प्राप्त हुई, और पारंपरिक आहार के रूप में नई वैधता भी प्राप्त हुई।

यह ध्यान रखना ज़रूरी है कि जिन पाक पुस्तकों का यहाँ ज़िक्र किया गया है, वे सभी अवध के उसी इलाक़े और पाक परंपरा से संबंधित रही हैं जहाँ के नवाबी पकवान मशहूर और जग-प्रसिद्ध रहे हैं।[23] परंतु इन हिंदी पाक पुस्तकों में इस नवाबी ठाट-बाट से सम्पन्न पकवानों की झलक नगण्य है। लगभग हर पुस्तक आम हिंदू परिवारों द्वारा खाए जाने वाले रोज़मर्रा के खाद्य पदार्थों से संबंधित है। अतः इन पाक-संग्रहों को ऐसे ऐतिहासिक अभिलेख की मानिंद समझा जा सकता है जो बीसवीं शताब्दी की शुरुआत में शहरी मध्यवर्गीय दुनिया में हो रहे बदलाव को इंगित करते हैं, और उस बदलती दुनिया को क़रीब से देखने में हमारे सहायक होते हैं। रसोई के नियम और खान-पान की सलाहें मध्यवर्गीय घरेलू परिवर्तनों और संबंधित चर्चाओं के निकट ले जाती हैं। यह कहा जा सकता है कि 1920 के दशक में हिंदी पट्टी के राष्ट्रवादी प्रचारकों और रहनुमाओं की तरह ही ये पाक पुस्तिकाएँ भी एक अतीत-आधारित और भविष्योन्मुखी राष्ट्र की (पुन:) कल्पना करती हैं।[24]

पाक चंद्रिका की दुनिया : उत्तर प्रदेश की हिंदी पाक-पुस्तिकाएँ

आहार परंपरा के समकालीन अध्ययन विभिन्न समाजों में दैनंदिन आदतों और रुचियों के परिवर्तन पर ध्यान केंद्रित करते हुए उन जटिल संबंधों को रेखांकित करते हैं जो स्थानीय संस्कृतियों और वैश्विक आधुनिकताओं के बीच उभरते हैं। भारतीय व्यंजनों की विभिन्न

---

[22] स्टुअर्ट ब्लैकबर्न (2003) : 9.

[23] अब्दुल हलीम शरर (1926) (1971); हॉली शेफ़र (2012) : 110-125; लिज़्ज़ी कोल्लिंघम (2006) : 93-98; कॉलीन सेन (2015) : 192-201.

[24] जैसा कि फ्रंचेस्का ओर्सीनी ने दर्शाया है, बीसवीं सदी में सस्ती किताबों और रंगमंच के माध्यम से जो फुर्सत का व्यवसायीकरण हुआ, उससे रोज़मर्रा के संवादों में राजनीतिक आशय, विमर्श और रूपक शामिल होने लगे. देखे, ओर्सीनी (2009) : 1-48.

01saumya_Layout 1 22-02-2024 15:14 Page 7

क़िस्में इस प्रस्ताव को सर्वश्रेष्ठ रूप में प्रस्तुत करती हैं। भारत के प्राचीन और मध्ययुगीन व्यंजन कोई अखंड इकाइयाँ तो थे नहीं। प्राचीन काल के युरोपीय व्यापार और सांस्कृतिक आदान-प्रदान के अवशेष भारतीय व्यंजनों में रचे-बसे हैं। पुर्तगाली और मध्य एशियाई राजनीतिक और व्यापारिक सम्बन्धों ने समय के साथ भारतीय व्यंजनों को स्वाद और विविधता से समृद्ध किया है। औपनिवेशिक काल में क्षेत्रीय थालियों की बहुतायत में बर्तानवी मेमों और भारतीय ख़ानसामों के प्रयोगों ने संकरता की एक परत और जोड़ दी; कालांतर में देसी और विदेशी, केंद्रीय और क्षेत्रीय, नवाबी और घरेलू खाद्य परंपराओं ने घुल-मिल कर एक-दूसरे को परिष्कृत ही किया।[25] उन्नीसवीं सदी के व्यंजन पटल पर एक सरसरी निगाह डालने से ही स्पष्ट हो जाता है कि नए खाद्य पदार्थों की स्वीकृति, अस्वीकृति के साथ-साथ घरेलू रसोई में अनेक पाक प्रयोग निरंतर ही हो रहे थे। उदाहरण के तौर पर, 19 वीं सदी के उत्तरार्ध में उत्तर भारत में नए फल और सब्ज़ियों की फ़सलों को सरकारी प्रोत्साहन दिया जा रहा था। नई दुनिया के इन उत्पादों को पारंपरिक रसोई में शामिल होने में मामूली प्रतिरोध का ही सामना करना पड़ा और जल्द ही आयातित आलू, टमाटर, मकई, गाजर इत्यादि रोज़मर्रा के भोजन में स्थापित हो गए।[26] मगर बीसवीं सदी की शुरुआत में जैसे-जैसे भारतीय राष्ट्र के निर्माण पटल में अपनी जगह बनाने के लिए विभिन्न आवाज़ें उठीं, परंपरा, रिवाजों और स्थापित रीतियों के बारे में ऊहापोह और अकुलाहट बढ़ गई। घर और समुदाय, लैंगिक और जातीय मानदंडों पर पुनः ज़ोर देते हुए, परिवर्तन और आधुनिकता पछोरते हुए, नवाचार त्यागते हुए, हिंदी पट्टी की पाक पुस्तकें परिवर्तन विरोधी जामा ओढ़ लेती हैं और एक सख़्त विधेय रूप धारण कर लेती हैं। इस लेख में उद्धृत पाक पुस्तिकाएँ इसी प्रक्रिया को स्पष्ट करने का प्रयास हैं।

इस पर्चे में जिन चार घरेलू पाक पुस्तिकाओं का ज़िक्र किया जाएगा, वे सभी बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में उत्तर प्रदेश से प्रकाशित हुई थीं। कार्तिक प्रसाद रचित *पाकराज* (द्वितीय संस्करण) 1908 में और गिरीशचंद्र जोशी रचित *आदर्श पाक विधि* 1938 में बनारस से प्रकाशित हुईं। पंडित मणिराम शर्मा द्वारा लिखित *पाक चंद्रिका* 1926 में इलाहाबाद से, और पंडित नरसिंह शुक्ल द्वारा लिखी गई *वृहद पाक विज्ञान* मथुरा से 1939 में प्रकाशित हुई। हिंदी पट्टी के लोक में रची-बसी ये चारों घरेलू पाक पुस्तिकाएँ अनेक व्यंजनों की विधि के साथ-साथ गृहस्थी संबंधी विमर्शों की अंतरंग झलक देती हैं। *पाकराज, वृहद पाक विज्ञान* और *आदर्श पाक विधि* – ये तीनों पुस्तकें अपने आप में वृहद् संकलन हैं और हिंदी पट्टी की खान-पान परंपरा के दस्तावेज़ हैं। परंतु इस पर्चे की धुरी *पाक चंद्रिका* है जो व्यंजनों के विस्तृत संकलन और घरेलू निर्देश के माध्यम से राष्ट्रीय आकांक्षाओं-चिंताओं के निवारण-सूत्र प्रस्तुत करती है। *पाक चंद्रिका* में प्रस्तुत आदर्शों और घरेलू हिदायतों के अध्ययन से हिंदी पट्टी का सामाजिक ताना-बाना स्पष्ट उजागर हो जाता है।

---

[25] पुष्पेश पन्त (2013) : 1-34.

[26] कॉलीन सेन (2015) : 213.

01saumya_Layout 1 22-02-2024 15:14 Page 8

ऊपर वर्णित सभी पाक पुस्तिकाएँ पुरुषों द्वारा लिखी गई हैं। पाक शास्त्र के इन पुरुष ज्ञाताओं ने, बिना किसी विडंबना-बोध के, पाक क्रिया को स्त्रियों के प्राकृतिक कार्य-क्षेत्र के रूप में वर्णित किया है। अतीत के जिन मुख्य ख़ानसामों की उन्होंने भूरि-भूरि प्रशंसा की है, वे भीम और नल थे न कि उनकी पत्नियाँ। अधिकांश पुस्तकों का आरम्भ माँ अन्नपूर्णा की स्तुति या संस्कृत के मंगलाचरण से होता है, जैसे कि *शरीर माध्यम खलु धर्म साधनम्*। सभी ने पाक शैली की उत्पत्ति वैदिक और महाकाव्यात्मक दौर के पाकशास्त्रों में चिह्नित की है। सभी में पाकविधि और भोज्य सामग्री की एक तुलनीय विषय-सूची और वर्गीकरण सम्मिलित है, जो पकवानों के मुख्य खाद्य संघटकों पर आधारित है। इस प्रकार, रोटी प्रकरण, दाल प्रकरण, चावल प्रकरण, शाक प्रकरण, रायता प्रकरण, मिष्ठान्न प्रकरण आदि में व्यंजनों को अनुक्रमित किया गया है। साफ़ है कि यह वर्गीकरण 12-13वीं सदी के संस्कृत ग्रंथ *पाक दर्पणम्* से लिया गया है। *पाक दर्पणम्* महाभारत में वर्णित प्रसिद्ध राजा नल की पाक कला को उद्धृत करता है।[27] तेरहवीं सदी के *पाक दर्पणम्* और बीसवीं सदी के पाक-शास्त्रों में एक स्पष्ट अंतर मांसाहार या आमिष प्रकरण को लेकर दिखाई देता है। मांस प्राचीन वैदिक युग का महत्त्वपूर्ण आहार था और *पाक दर्पणम्* में आम तौर पर मौजूद है। परंतु बीसवीं सदी में कुछ ही हिंदी पाक-पुस्तिकाओं में मांस और आमिष प्रकरण शामिल किया गया। इस व्यापक वर्गीकरण के भीतर, एक वर्णानुक्रम आधारित द्वितीयक वर्गीकरण का इस्तेमाल होता है। इसमें नाना प्रकार की व्यंजन विधियाँ परिमाण इत्यादि के साथ उपलब्ध हैं।

इस पर्चे में उल्लिखित चारों पाक-पुस्तिकाओं में *पाकराज* सबसे पहले छपी। अतः हम *पाकराज* से शुरू करते हैं, पर सिर्फ़ इसलिए नहीं कि यह यहाँ इंगित चार पुस्तकों में से प्रारंभिक पुस्तक है। यद्यपि *पाकराज* के वर्गीकरण और पाकविधियों का पालन अन्य तीनों पुस्तिकाओं में बड़े पैमाने पर मिलता है, पर बाद की पाक-पुस्तिकाओं, विशेष रूप से *पाक चंद्रिका* के लहजे और उसमें आने वाले बदलाव महत्त्वपूर्ण हैं। कार्तिक प्रसाद द्वारा लिखित *पाकराज* पिछली शताब्दी के अंत में बनारस से प्रकाशित हुई थी। क़रीब 94 पन्नों की इस पतली-सी किताब में 'साधारण हिंदू परिवारों के लिए' केवल शाकाहारी पाकविधियों के प्रकरण थे। हालाँकि लेखक मांसाहार विरोधी नहीं है और पुस्तक की भूमिका में यह वादा है कि आगामी संस्करणों और भागों में आमिष व्यंजन शामिल किया जाएगा : 'यह पुस्तक आम हिंदू परिवारों के लिए लिखी गई है, यही वजह है कि इसमें आमिष व्यंजनों को पकाने की विधि शामिल नहीं की गई है।'[28] ज़ाहिर है कि मांसाहार ख़ास रसोई है, और यद्यपि दिन-प्रतिदिन

---

[27] भट्टाचार्य, *पाक दर्पणम्* (महाराज नल रचित), 1983. यह ग्रंथ एक पूर्व-मध्यकालीन संकलन है, जो जी. जॉन म्युलेनबेल्ड कृत '*भारतीय चिकित्सा साहित्य का इतिहास*' में सूचीबद्ध बत्तीस संस्कृत (पाकशास्त्र) में सबसे विस्तृत रसोई पुस्तकों में से एक है. म्युलेनबेल्ड यह भी नोट करते हैं कि न इस ग्रंथ के वास्तविक लेखक के बारे में कोई विशेष जानकारी है, और न ही इसके रचे जाने की तिथि ज्ञात है. हालाँकि ग्रंथ में मिर्च जैसे कुछ पौधों की अनुपस्थिति के आधार पर उन्होंने इसे 12वीं से 17वीं शताब्दी के बीच का बताया है. देखें, म्युलेनबेल्ड (2009) : 416-17.

[28] कार्तिक प्रसाद (1908) : 2.

हिंदू परिवारों में पकाई-परसी नहीं जाती है, उसे खाना और पकाना सीखना पाक कला का स्थापित हिस्सा है। रसोई की स्थिति और जगह, चूल्हों और ईंधनों की विविधता और गुणों, विभिन्न बर्तनों के गुणों, घी और विभिन्न मसालों की तैयारी इत्यादि भारतीय रसोई की बुनियादी गतिविधियों के रूप में *पाकराज* विशुद्ध रूप से व्यावहारिक सलाह देने से आरम्भ होती है। व्यंजनों को मोटामोटी चावल, दाल, रोटियाँ, रायता, पकौड़ी, तरकारी और मिष्ठान्न में विभाजित किया गया है। इस प्रारंभिक वर्गीकरण में मीठे और खट्टे व्यंजनों में कोई अंतर नहीं है। व्यंजनों के बारे में सरलता से बताया गया है, हालाँकि कुछ का क्रियान्वयन सरल प्रतीत नहीं होता है।

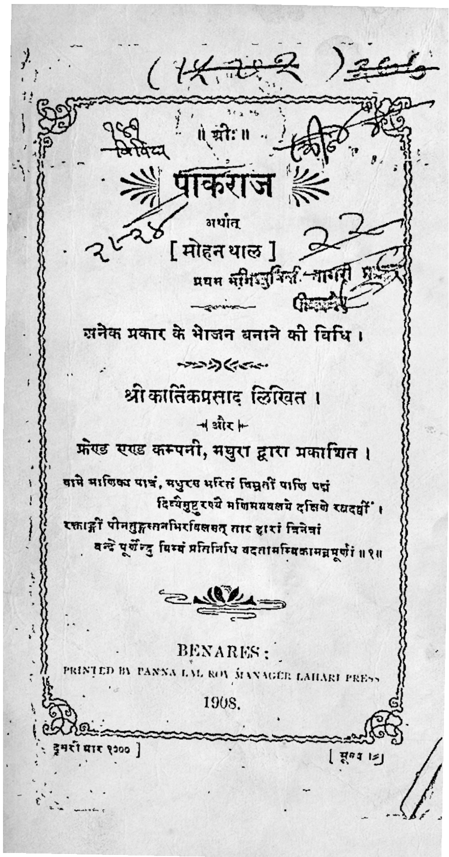
॥ श्रीः ॥

पाकराज

अर्थात

[मोहन थाल]

अनेक प्रकार के भोजन बनाने की विधि।

श्री कार्तिकप्रसाद लिखित।

और

फ्रेण्ड एण्ड कम्पनी, मथुरा द्वारा प्रकाशित।

वामे माणिक्य पात्रं, मधुरस भरितं बिभ्रतीं पाणि पद्मं
दिव्यैर्मुष्टुरण्ये मणिमयवलये दक्षिणे रत्नदर्वीं।
रक्ताङ्गीं पीनतुङ्गस्तनभरविलसत् तार हारां त्रिनेत्रां
वन्दे पूर्णेन्दु बिम्बं प्रतिनिधि वदनामम्बिकामन्नपूर्णां ॥१॥

BENARES:
PRINTED BY PANNA LAL ROY MANAGER LAHARI PRESS
1908.

दूसरी बार १०००] [मूल्य ।=)

पाकराज में उन भोजनों के बारे में कोई अनुदेशात्मक बात नहीं है जो मूलरूप से नए हैं या जिनकी उत्पत्ति विदेश में हुई हो। विदेशीपन का अर्थ 'अस्थानीयता' के ज़्यादा निकट पड़ता था। उदाहरणतः, खंड पाँच में बंगाली मिठाइयों का ज़िक्र किया गया है। परंतु इनकी संख्या केवल पाँच है – छेना बनाने की विधि, छेना बड़ा, गोला संदेश, छेना की बर्फ़ी और 'लेडिगेनि' जो आज भी बंगाल की मिठाइयों की दुकान में उपलब्ध होती है।[29] इन मिठाइयों की दी हुई विधि आज की विधि से काफ़ी सरल है। यह स्पष्ट है कि बंगाली मिठाइयों के विशाल संसार से हिंदी पट्टी अभी परिचित हो ही रही थी, और ये अभी भी बहुतों के लिए एक लुभावनी-अजनबी चीज़ थी।

इसी प्रकार एक अंग्रेज़ी तरकारी का ज़िक्र इस टिप्पणी के साथ है कि इसे 'प्रिंस ऑफ़ वेल्स खाते थे।' *पाकराज* के लेखक में विदेशी या अन्य क्षेत्रीय पकवानों के प्रति कोई दुराग्रह नहीं दिखता। एक तरफ़ विभिन्न अंग्रेज़ी सिरप और पेपरमिंट लॉज़ेन्जेज़, वाइन, अदरक और चीनी से बनने वाले 'विलायती बढ़िया बिस्किट' बनाने की प्रविधि दी गई है, वहीं इन विलायती नुस्ख़ों के समानान्तर स्थानीय फलों के शरबतों की विधि भी दी गई है। भारतीय व्यंजनों के माप पुरानी अकबरी इकाइयों में, और पश्चिमी व्यंजनों के ब्रिटिश शाही इकाइयों में हैं। हालाँकि कभी-कभी हम कुछ ख़ास व्यंजनों के नुस्ख़ों में माप और अनुपात का एक विचित्र घालमेल देखते हैं, जैसे कि 'लेमोनेड चूर्ण' नींबू शरबत का मसाला के निर्देशों के अनुसार, 'नीबू का रस डेढ़ औंस, शक्कर दो पाव, टार्टरिक 4 औंस, सोडा बाईकार्ब 4 औंस, इन सभी

[29] जे. हालदार (1924).

01saumya_Layout 1 22-02-2024 15:14 Page 10

को मिलाकर एक काँच के जार में रखा जाए। पानी में इस मिश्रण को एक चम्मच मिलाने से शानदार विलायती मीठा पानी बनता है।'[30]

ऊपर उल्लिखित खाना पकाने की विभिन्न परंपराओं का सुखद सह-अस्तित्व भारत की पाक विरासत का अभिन्न अंग है। *पाकराज* सरीखी पुस्तकें बताती हैं कि आहार विज्ञान प्राचीन भारत में अत्यधिक विकसित था, और यह भी कि मुस्लिम काल के दौरान इसे नई ऊँचाइयों पर ले जाया गया। हम पाते हैं कि यह पुस्तिका सांस्कृतिक रूप से अपने प्रति आश्वस्त है। यद्यपि सांस्कृतिक भिन्नता के कई बिंदु स्पष्ट हैं, *पाकराज* में भिन्नता को लेकर कुछ ख़ास विद्वेष नहीं है, और न ही राष्ट्रीय भोजन को लेकर कोई कठोर राजनीतिक लाइन है।

दूसरी व्यंजन पुस्तक *पाक चंद्रिका* अन्य चारों की अपेक्षा काफ़ी प्रसिद्ध हुई। नामी हिंदी पत्रिका *चाँद* के प्रख्यात संपादक रामरख सिंह सहगल ने इसे अधिकृत किया था।[31] लेखक पंडित मणिराम शर्मा का प्रकाशन से पहले निधन हो गया और पुस्तक के अंतिम मसौदे का संपादन *चाँद* प्रेस की प्रबंधक और सहगल की पत्नी विद्यावती सहगल ने किया।[32] *पाक चंद्रिका* का पहला संस्करण 1926 में निकला और चार साल के भीतर इसकी छह हज़ार से ज़्यादा प्रतियाँ बिक चुकी थीं। 1934 में पुन: 2000 प्रतियों का नया संस्करण आया।

पाक चंद्रिका का विस्तृत सूचीपत्र तत्काल ही ध्यान आकर्षित करता है। 39 पृष्ठों में 836 व्यंजनों की सूची क्रमबद्ध है। इस लंबी सूची को सोलह अलग-अलग वर्गों में वर्गीकृत किया गया है, जिसमें सब्ज़ियों की 103 विधियाँ, दाल बनाने के 38 तरीक़े, चावल बनाने के 26, खिचड़ी बनाने के 22 तरीक़े, विभिन्न अनाजों से दलिया बनाने के 12 और कढ़ी बनाने के 43 तरीक़े शामिल हैं। साथ ही, रोटियों के 80 अलग-अलग प्रकार बताए गए हैं। भोजन का स्वाद बढ़ाने हेतु 113 विभिन्न प्रकार की चटनियों, अचारों, मुरब्बों और रायतों इत्यादि का भी उल्लेख है। 44 प्रकार के फ़रसान और नमकीन सिलसिलेवार लिखे गए हैं। मीठे की लालसा शांत करने के लिए 19 प्रकार के दूध, 83 प्रकार के मिष्ठान्न, 20 प्रकार की खीर और 21 प्रकार की बंगाली मिठाइयाँ हैं। इस मीठे को संतुलित करने के लिए, अगला खंड 13 प्रकार की चाटों का वर्णन करता है और आख़िरी प्रकरण उपवास में खाए जाने वाले 27 खाद्य पदार्थों को सूचीबद्ध करता है।[33] इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि छह सौ पृष्ठ लम्बे खाना पकाने के इस 'सम्पूर्ण ग्रंथ' का प्रचार 'बेटियों और बहनों के लिए एक उपयुक्त शादी का तोहफ़े' के रूप में किया गया।[34]

---

[30] कार्तिक प्रसाद (1908) : 81.

[31] 1922 में इलाहाबाद से शुरू, *चाँद* बीसवीं सदी के शुरुआत दशकों के सबसे सफल हिंदी मासिकों में से एक थी. 1927 में इस पत्रिका की 8000 प्रतियाँ बिकीं, जो 1930 में 15000 तक पहुँच गई. इसके संपादक रामरख सिंह सहगल इस उत्कृष्ट सफलता के खेवनहार थे। *चाँद* की अभिनव और सुधारवादी पत्रकारिता और इसके करिश्माई संपादक रामरख सहगल की भूमिका के लिए देखें, ओर्सीनी (1999) : 137-160.

[32] 'दो शब्द,' *पाक चंद्रिका*. पंडित मणिराम शर्मा गृहविज्ञान, सामाजिक उपन्यास और पाक पुस्तकों के लेखक थे. *पाक-विद्या* (1922), *आदर्श परिवार* (1925) और *पाक चंद्रिका* (1926) जैसी सफल कृतियों में भोजन, खाना पकाने और हिंदू घरेलू-जगत के समक्ष उनकी चिंताओं को देखा जा सकता है. देखें रेचेल बर्जर (2013) : 9.

[33] मणिराम शर्मा (1926) : 3-39.

01saumya_Layout 1 22-02-2024 15:14 Page 11

परंतु इस सम्पूर्ण ग्रंथ में भी निःसंदेह कुछ छूट गया था। जैसा कि साफ़ है, 836 व्यंजनों की यह विशाल सूची पूरी तरह शाकाहारी है। शाकाहार का यह निर्णय *पाकराज* की भाँति पुस्तक की लंबाई कम करने हेतु लिया एक मासूम विचार नहीं था। पुस्तक के आकार को देखते हुए इसे महज़ चूक नहीं कह सकते, जैसा कि *पाकराज* जैसी पुस्तिका के लिए शायद कहा भी जा सकता है। न ही *पाक चंद्रिका* का देशकाल पूरी तरह शाकाहारी था। बल्कि *पाक चंद्रिका* के लिए अपनी विशाल व्यंजन-सूची से मांस का बहिष्कार करना एक राजनीतिक बयान और धार्मिक विमर्श था। यह तब और स्पष्ट हो जाता है जब हम *पाक चंद्रिका* को दस-बारह वर्षों के भीतर प्रकाशित उसी क्षेत्र की दो अन्य पाक पुस्तकों के साथ मिलाते हैं। *आदर्श पाक विधि* और *वृहद् पाक विज्ञान* दोनों ही ग्रंथों में मांसाहार खाने और पकाने में सम्मिलित था। 1938 में छपी *आदर्श पाक विधि* को दो वर्गों में विभाजित किया गया था – एक व्यापक शाकाहार खंड, जिसमें 550 से अधिक व्यंजन शामिल थे और एक मांसाहार खंड, जिसमें लगभग 160 व्यंजन शामिल थे। 1939 में छपे *वृहद् पाक विज्ञान* ने शीर्षक पृष्ठ में ही कहा है कि इसमें शाकाहारी और मांसाहारी व्यंजनों को शामिल किया गया है, हालाँकि आमिष खंड, निरामिष के आकार का एक छोटा अंश भर था।

हालाँकि, 1920 के उपरांत जब राष्ट्र की परिकल्पना हिंदू राष्ट्र के रूप में और आदर्श हिंदू को शाकाहारी के रूप में परिभाषित किया जाने लगा, तब *आदर्श पाक विधि* और *वृहद् पाक विज्ञान* दोनों को स्पष्ट रूप से अपने चयन की कैफ़ियत देनी पड़ी। उच्च जाति के लेखकों के लिए शाकाहार गर्व और आदर्श का विषय था। *आदर्श पाक विधि* की प्रस्तावना में यह स्वीकार किया गया था कि 'हमारे देश में शाकभोजियों की बनिस्बत आमिष भोजियों की संख्या ही अधिक है', इसलिए 'इस तरह की पुस्तक में उस विषय का समावेश' न करने से एक अनुपयोगी और अपूर्ण ग्रन्थ तैयार होगा।[35] अपने इस समावेशन को और अधिक न्यायोचित ठहराने के लिए प्राचीन हिंदू अतीत की धर्मनिरपेक्षता का आह्वान किया गया था : 'यह संभव है कि निरामिष भोजियों [को] इन दोनों विधियों के एक साथ रहने पर कुछ आपत्ति हो, पर जिस तरह हमारे धर्म ग्रंथों में सभी तरह के विषयों के एक साथ समावेश से सभी उनका लाभ उठा सकते हैं, उसी तरह ऐसे ग्रंथों से भी अपने मतलब की बात जान लेने में कोई हानि की संभावना नहीं होनी चाहिए।'[36] प्रकाशक द्वारा इस क्षमायाचना और दोषमुक्ति आग्रह के बावजूद *आदर्श पाक विधि* में शाकाहार खंड और मांसाहार खंड के बीच पथ्य प्रकरण को जगह दी गई है। लगता है आहत भावनाओं को शांत करने के लिए प्रकाशक ने एक प्रकार का बफर ज़ोन बना दिया है, जो कि शुद्धता की दहलीज़ गढ़ते हुए छपे पन्नों पर भी शाकाहारी खंड को प्रदूषित होने से बचा रहा हो।

---

[34] *चाँद* में छपा विज्ञापन, (1931).

[35] *दो शब्द* (प्रकाशकीय आमुख), गिरीश चंद्र जोशी (1938).

[36] वही.

01saumya_Layout 1 22-02-2024 15:14 Page 12

इसके इतर, इन पाक पुस्तकों में शाकाहार पारंपरिक हिंदू धर्म या संस्कृति के बजाय आर्य समाजी और अहिंसा के गांधीवादी आग्रह से अधिक जोड़ा गया था। गांधी का शाकाहारवाद जितना पारंपरिक हिंदू पारिवारिक नैतिकता से निर्देशित था, उतना ही वह उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध की रैडिकल ब्रिटिश राजनीति की उपज भी था। उनके आहार संबंधी विश्वास वैष्णव-जैन नैतिकता की उनकी विरासत के साथ-साथ हेनरी सॉल्ट, जोशिया ओल्डफ़ील्ड और लियो टॉलस्टॉय जैसे युरोपीय शांतिवादियों के साथ उनके जुड़ाव का उत्पाद थे। गांधी ने उपनिवेशवाद विरोध, उद्योगवाद-विरोध और शाकाहारवाद को मिलाकर अहिंसा का एक विस्तृत दर्शन और व्यवहार खड़ा किया।[37] इसे *वृहद् पाक विज्ञान* के ब्राह्मण लेखक नरसिंह शुक्ल अच्छी तरह समझते थे और उनमें मांसाहार के प्रति कोई ज़्यादा आशंका या झिझक नहीं थीं। बड़े ही अविचलित ढंग से उन्होंने पुस्तक की भूमिका में शाकाहार-मांसाहार विवाद पर अपना पक्ष रखा : 'जो लोग अहिंसावाद के सिद्धांत को मानते हैं, जीव-हत्या को पाप समझते हैं, वे निरामिषी होते हैं। जो इन बातों पर नहीं मानते, वे ही आमिषी खाते हैं। कुछ लोग तो ऐसे हैं जो कहते हैं कि मांस भक्षण नहीं करना चाहिए परंतु स्वयं करते हैं।'[38] नरसिंह शुक्ल ने साफ़ लिखा कि 'आज संसार में अधिकांश लोग आमिष का प्रयोग करते हैं'। यद्यपि उनका स्पष्ट मानना था कि मांस के प्रति विरक्ति न तो संस्कृति और न ही धर्म में निहित थी, नरसिंह शुक्ल का यह पाक-समन्वय समकालीन शाकाहारी हिंदू राष्ट्रवादी आग्रहों को मान्य नहीं था। अतः उन्हें वृहद् पाक विज्ञान में मांसाहारी व्यंजन विधियों को शामिल करने का औचित्य देना पड़ा : 'इस विषय पर लिखने से हमारा यह अभिप्राय नहीं है कि हम लोगों से मांस भक्षण की वकालत करना चाहते हैं…केवल पुस्तक को सर्वांगपूर्ण करने के अतिरिक्त इस विषय से हमारा कुछ और संबंध नहीं है।'[39]

इस समावेशी खाद्य आग्रह के विपरीत, *पाक चंद्रिका* द्वारा कल्पित और मनोचित्रित दुनिया पूरी तरह से शाकाहारी थी। 1920 के दशक में, जब यह पुस्तक प्रकाशित हुई थी, हिंदू राष्ट्रीय पहचान गढ़ने की अभिव्यक्तियाँ अपने चरम पर थीं। वस्तुतः इस किताब के पन्नों से मांस और मांसाहार पूर्णतः निषिद्ध थे।[40] इस तथ्य के बावजूद कि बहुतेरे हिंदू *बख़ुशी* मांस का सेवन करते थे, इस पुस्तक ने उच्च जातीय आदर्श को पाक परंपरा पर लाद दिया और किसी भी तरह के मांस सेवन को पाप घोषित कर दिया। बीसवीं सदी के आरम्भ में छपी *पाकराज* की समावेशी व्यंजन परंपरा अथवा पाक दृष्टि से स्वच्छन्द *आदर्श पाक विधि* और *वृहद् पाक विज्ञान* के विपरीत,

---

[37] निको स्लेट (2019) : 64. गांधीवादी आहार प्रयोगों पर लीला गांधी (2006) और जोसेफ़ ऑल्टर (2000) के शोध भी देखें.

[38] नरसिंह शुक्ल (1939) : 228.

[39] वही.

[40] बीसवीं सदी की शुरुआत में शाकाहार और मांसाहार का मसला राष्ट्रवादी सोच के लिए महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक प्रश्न बन गया. मांसाहार पश्चिमी भौतिकवाद की पहचान बन गया, और शाकाहार को पूर्व के अध्यात्म और सभ्यता की उच्चतम निशानी माना गया. देखें, सेनगुप्ता (2012) : 73-87.

01saumya_Layout 1 22-02-2024 15:14 Page 13

पाक चंद्रिका में कोई मांसाहारी या 'विदेशी' व्यंजन शामिल नहीं था। *पाक चंद्रिका* के लेखक पंडित मणिराम शर्मा का विस्तृत व्यंजन-फलक एक संकीर्ण शाकाहारी संसार में रचा बसा था। हिंदू राष्ट्र की इस परिकल्पना में शाकाहार एक राजनीतिक-सांस्कृतिक लक्ष्मण-रेखा खींचने का प्रयास प्रतीत होता है।

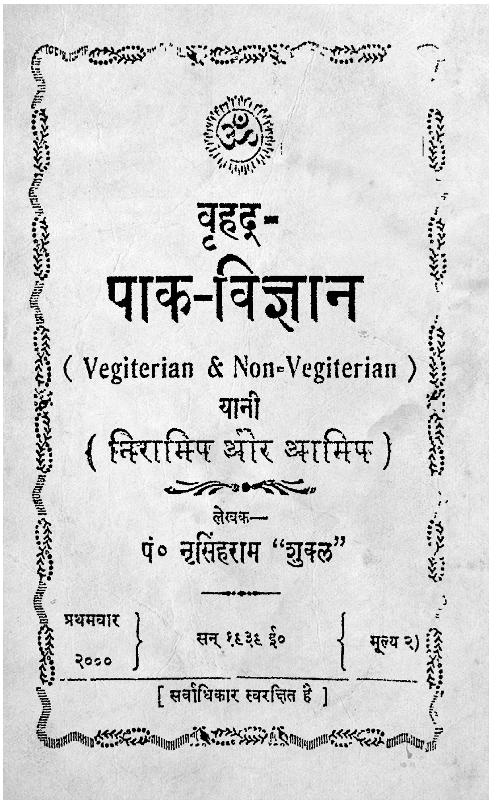
ॐ
वृहद्-
पाक-विज्ञान
(Vegiterian & Non-Vegiterian)
यानी
(निरामिष और आमिष)
लेखक—
पं० नृसिंहराम "शुक्ल"
प्रथमवार २०००
सन् १९३९ ई०
मूल्य २)
[सर्वाधिकार स्वरक्षित है]

आर्यावर्त की आधुनिक परिकल्पनाएँ : भाषा, जाति, समुदाय

राष्ट्र और समुदाय की सियासत में इस कल्पित आर्यावर्त और उसकी आधुनिक परिकल्पनाओं का अंदाज़ा किताब की भाषा से बख़ूबी लगाया जा सकता है। *पाक चंद्रिका* के अलावा बाक़ी तीन पाक पुस्तकों की भाषा हिंदुस्तानी या आम बोलचाल की हिंदी है। पुस्तक पढ़ते हुए हिंदी क्षेत्र के दैनिक लहजे का आभास होता है : *वृहद् पाक विज्ञान* में *रामचरितमानस* की चौपाइयाँ हैं, रहीम और कबीर के दोहे हैं और नज़ीर अकबराबादी की नज़्में भी; *पाकराज* और *आदर्श पाक विधि* में भी भोजन, खाने और पकाने पर लोकोक्तियाँ और मुहावरे भरपूर हैं। लगता है कि हिंदी पट्टी के बड़े-बूढ़ों की सीख उन्हीं की भाषा में हमसे मुख़ातिब है।[41]

इसके विपरीत, *पाक चंद्रिका* अत्यंत सुसंस्कृत मुहावरे का अनुसरण करती है। हिंदुस्तानी जो कि हिंदी क्षेत्र की रोज़मर्रा की बोली है को यहाँ कोई स्थान नहीं दिया गया है। खाना पकाने के लिए भी हिंदुस्तानी/उर्दू समानार्थक आम शब्दों का प्रयोग नहीं किया गया है। खाना पकाने को हमेशा प्रणाली, शास्त्र, विज्ञान, विधि या रंधनकार्य के रूप में संदर्भित किया जाता है, भोजन हमेशा खाद्य या भोजन होता है, 'खाना' कभी नहीं, रसोई एक 'पाकशाला' है, उसे विरले ही रसोई कहा गया है। इस शुद्धतावादी नक़्शे में, परिचित खाद्य पदार्थ और व्यंजनों को भी उनके संस्कृतनिष्ठ रूप में ही दर्ज किया गया है : अतः खिचड़ी 'मिश्रान्न' है, कढ़ी 'तक्रान्न', पूड़ी और पराँठे 'घृतान्न' की श्रेणी में आते हैं, और पुलाव 'पल्लान्न' के नाम से अभिहित है। संस्कृतनिष्ठ भाषा का प्रयोग न केवल पदार्थ वर्गीकरण के लिए किया गया है बल्कि मामूली सब्ज़ियों और फलों को भी उनके संस्कृत नामों से ही सम्बोधित किया गया है : उदाहरण के लिए, कुछ जगहों पर प्याज़ को उसके प्राचीन नाम 'पल्लांडु' कहा गया है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे इसके लेखक

[41] नरसिंह शुक्ल (1939) : 19.

01saumya_Layout 1 22-02-2024 15:14 Page 14

राजा नल के *पाक दर्पणम्* की दुनिया को पुनर्निर्मित करना चाहते हैं, और संभवतः मुस्लिम/फ़ारसी प्रभाव के पहले की हिंदू रसोई को उसी पुरानी भाषा में परोसने के लिए आतुर हैं।

भाषा की तरह, व्यक्तिगत व्यंजन भी सांस्कृतिक और सामुदायिक अंतर को इंगित करते दिखते हैं। हिंदू और मुस्लिम पाक शैलियों में अलग-अलग मसाले प्रयोग होते थे : हिंदू हींग और मुसलमान प्याज़ का इस्तेमाल करते थे। इसी प्रकार अंग्रेज़ मशीन से पिसे हुए 'करी पाउडर' का इस्तेमाल करते थे, जबकि भारतीय विधि से बने *कलिया* और *कोरमा* में केवल साबुत या ताज़े पिसे मसालों का ही इस्तेमाल किया जाता था। अंग्रेज़ी तौर से पकाए – मुख्य रूप से उबाल कर या कम मसाले में भूनकर – मांस पकाने के तरीक़े को असभ्य या 'आदिम' कहा गया है।[42] इस बात पर ज़ोर था कि रोटी हमेशा ताज़ा ही बनानी और खानी चाहिए। अंग्रेज़ी ब्रेड बाज़ार में उपलब्ध तो थी, पर 1920-40 तक उनका उपभोग नए फ़ैशन के रूप में ही देखा जाता था। *ख़मीरी रोटी, तंदूरी रोटी और शीरमाल* को मुसलमानों और पंजाबियों का खाना बोला गया, क्योंकि ये समुदाय साझे चूल्हे के इस्तेमाल को अपवित्र नहीं मानते थे।[43] ऐसे अनेक अंतर – ख़मीर का उपयोग, अपरिचित तंदूर चूल्हा और उल्टा तवा – तथाकथित रूप से पाक विधियों में मौजूद धार्मिक और सांस्कृतिक भेद के परिचायक थे और एक तरह से समुदायों के बीच के विरोध को रेखांकित करते थे।

उच्च जातीय हिंदू रसोई का आधार कच्चे और पक्के खाने के भेद में निहित माना गया है।[44] यह विभाजन शुद्धता और अशुद्धता की आनुष्ठानिक धारणाओं पर आधारित है। पावन अपावन का यह द्विभाजन वर्ण-जाति व्यवस्था की नींव में है। कच्चा भोजन नियमित रूप से पानी से पकाया जाने वाला दैनिक भोजन – मुख्य रूप से उबला हुआ, जैसे दाल, खिचड़ी, बिना तली हुई सब्ज़ियाँ और रोटी – चूल्हे के समीप और चौके में ही खाया जाता था; इसे औपचारिक रूप से अधिक अन्तरंग और शुद्ध माना जाता था। पक्का भोजन घी या तेल में तला हुआ विशेष व्यंजन था, जो अपेक्षाकृत कम अपवित्र समझा जाता था और दावतों व उत्सवों में रसोई के बाहर साझा किया जा सकता था।[45] आम तौर से दोपहर वाली कच्ची रसोई होती थी और रात की पक्की। यह भोजन-श्रेणी विशेष रूप से हिंदी पट्टी की उच्चजातीय पारंपरिक पाक कला में उल्लेखनीय है, और इसे सभी पाक पुस्तकों में संदर्भित किया गया है। उदाहरण के लिए, सभी पाक पुस्तकों में, विभिन्न प्रकार की रोटियाँ बनाने की विधियाँ अलग-अलग प्रकरण में पाई जाती हैं, जो इस बात पर निर्भर करता है कि उन्हें सीधे आग पर रोटी (चपाती) के रूप में पकाया जाता है या तेल या घी में पराँठे या पूरियों की तरह तला जाता है।

अपवित्रता का ख़तरा देशाटन और यात्रा के वक़्त और भी प्रासंगिक हो उठता था। ऐसे समय के लिए 'अछूती रोटी' का सहारा लेने की सलाह दी गई है। 'अछूती' रोटी एक अनछुई

---

[42] गिरीश चंद्र जोशी (1938): 299.

[43] नरसिंह शुक्ल, *वृहद् पाक विज्ञान*, 52.

[44] मणिराम शर्मा (1926) : *387;* गिरीश जोशी (1938): 109; नरसिंह शुक्ल (1939) : 34-35 और 121.

[45] आर.एस. खरे, 'अन्न' (2004) : 418.; केटी अचाया (1994) : 62-63.

रोटी थी जो 'अदूषित' समझी जाती थी, और जिसके लंबे समय तक बासी या ख़राब होने का ख़तरा नहीं था। यात्रा के दौरान खायी जाने वाली यह रोटी जात-पात के कट्टर अनुयायियों को विदेश में अपवित्र हाथों से बने संदिग्ध भोजन को ग्रहण करने से बचाती थी।[46] 'अछूती' रोटी को बनाने की विधि सरल थी : पानी के बजाय केले के तने को मसल कर उसका दूध निकाल लिया जाता था। इसी दूध से आटा माँड़ा जाता था। विकल्प के रूप में बैंगन और मूली जैसी सब्ज़ियों को धीमी आँच पर भून कर, मसल कर आटा माँड़ा जा सकता था। तदुपरांत रोटियाँ सामान्य तरीक़े से बेल कर पका ली जाती थीं। छुआछूत की जो कर्मकांडी धारणाएँ जाति-व्यवस्था की रीढ़ थीं, उन्हें अछूती रोटी जैसे व्यंजनों के नुस्ख़ों में पूरी तरह से क़ुदरती आचरण बना दिया जाता है।

औपनिवेशिक लेखकों द्वारा रचित अधिकांश पाक-पुस्तकों में किचन या रसोई घर एक ऐसे स्थान के रूप में वर्णित है जहाँ हिंदुस्तानी ख़ानसामों का राज होता था। गोरी मेमसाहिबों को ये सलाह दी जाती थी के वे इस अंधेरी, धुएँ भरी दुनिया पर लगाम रखें, उसका प्रबंधन करें, पर स्वयं उसमें पकाने का जोखिम न उठाएँ।[47] इसके ठीक विपरीत हिंदुओं के रसोई घर को सर्वाधिक पवित्र क्षेत्र माना जाता था – जहाँ शुद्ध-अशुद्ध के नियमों का सटीक और अक्षरशः पालन किया जाता था।[48] फिर भी रसोई की दुनिया को हमेशा ही नवाचारों से रूबरू होना पड़ा है। पुराने विश्वासों को छोड़े बिना नई परंपराओं को गढ़ना पड़ता है। इसी प्रकार हिंदी पट्टी के हृदय में पनप रहे हिंदू राष्ट्र की रसोई को भी आधुनिक होने की ज़रूरत थी। शहरी भारतीय घरों के सुपरिचित चौके में शुद्धता और अपवित्रता की प्रवृत्ति, तथा उस चौके में महिलाओं की भूमिका पर एक नज़र डालते हैं जिससे यह समझने में मदद मिलेगी कि आधुनिक राष्ट्रवाद की तरह, उसके समकालीन इन हिंदी पाकपुस्तकों के विमर्श ने परंपरा और आधुनिकता के अंतर्विरोधों को कैसे सुलझाया।

सभी पाक पुस्तकों में रसोई के स्थान से संबंधित एक आरम्भिक खंड है। यह आम तौर पर विषय-प्रवेश का एक हिस्सा था, हालाँकि कई बार पाक पुस्तकों के मुख्य भाग में कुछ विशिष्ट सलाहों को दोहराया गया था। *पाकराज* में ये सलाह पाँच पन्नों में दी गई है जो कि *वृहद् पाक विज्ञान* में आठ पन्ने पर फैली है। *पाक चंद्रिका* में यह खंड बीस पृष्ठ लंबा है। आम तौर पर यह घरेलू सलाह 'पाक-शाला,' 'सामान रखने का स्थान', 'पाक एवं भोजन पात्र,' 'रसोइया' जैसे अनुच्छेदों में विभक्त है। *पाकराज* में दी गई स्पष्ट सरल सलाह *पाक चंद्रिका* में विमर्श का स्थान ले लेती है। भारतीय मध्यवर्गीय रसोईघर पर आधुनिक स्वच्छता और

---

[46] मणिराम शर्मा (1926) : 293. दलित साहित्य में 'शुद्ध और निर्मल' के रूप में अछूत शब्द को परिभाषित करने का एक उदाहरण रामनारायण रावत के शोधपत्र में भी मिलता है. रावत (2015) : 336.

[47] सिसीलिया लियोंग-स्लोबिर (2011) : 60-86, 114-133.

[48] 'जब तक भोजन (या उसका हिस्सा) कच्चा है, तब तक मनुष्य को कर्मकांडी सावधानियों के साथ भोजन करना चाहिए. उसे चौके में ज़मीन पर बने चौकोर निशान के अंदर बैठना होता है. यदि किसी अजनबी की छाया इस चौके पर पड़ती है, तो इसके भीतर पकाया गया सब कुछ प्रदूषित हो जाता है और इसे फेंकना पड़ता है'. ई. ए. एच. ब्लंट (1931/1969) : 97.

व्यवस्था के मानकों का असर इन निर्देशों में स्पष्ट है। घरेलू अनुशासन के इन आधुनिकतावादी मानकों को सभ्यतागत निवेश के रूप में प्रस्तुत किया गया था। यह सुव्यवस्था की सलाह पश्चिम के 'गुड हाउस्कीपिंग' के नियमों – जैसे रसोई हवादार, स्वच्छ और साफ़ होनी चाहिए, पैंट्री या भंडारघर रसोई के पास होना चाहिए, 'सभी चीजों की जगह और सभी चीज अपनी जगह पर' इत्यादि – को पूरब के चौके के लिए अनूदित करने की मुहिम सी प्रतीत होती है।[49] यह सलाह नए उभरते हुए वैश्वीकृत पारिवारिक आदर्श का देसी रूपांतरण भर नहीं थी, बल्कि पुरातन परिपाटी के माध्यम से स्थानीयकरण की कोशिश भी थी। उदाहरणतः रसोईघर का केवल साफ़ होना ही ज़रूरी नहीं था, उसका मिट्टी या गोबर के लेप से शुद्ध होना भी वांछित था। रसोई विभिन्न प्रकार के धातु के बर्तनों से सुसज्जित होनी चाहिए, हालाँकि पवित्रतता-अपवित्रता के पैमाने पर मिट्टी के बर्तनों को सर्वोत्तम माना जाता था, क्योंकि उनका पुनः उपयोग नहीं किया जा सकता था। मिट्टी के बर्तन को दोबारा इस्तेमाल करने से खाना दूषित होने की संभावना रहती है, इसलिए 'हमारे पूर्वज इसमें धर्म-अधर्म का भय लगा गए हैं'।[50] धातु के बर्तनों को विशेषतः चूल्हे की राख़ से नियमित रूप से साफ़ किया जाना चाहिए।

पीने और पकाने के पानी को उबालकर और छानकर शुद्ध करने की सलाह चारों पुस्तकों में है। ग्रामीण और शहरी जीवन का अंतर यहाँ दिखता है। 1920 के दशक तक कई शहरी नगरपालिकाओं में म्युनिसिपल पाइप लाइन बिछा दी गई थी और फ़िल्टर किया गया पानी उपलब्ध था, फिर भी जैसा कि *वृहद् पाक विज्ञान* ने नोट किया, सर्वोत्तम शुद्ध जल केवल बद्रिका-आश्रम के रास्ते, लक्ष्मण झूले के ऊपर की गंगा का ही हो सकता था; वैसा शुद्ध पानी शहरों में दुर्लभ ही था।[51] इसी प्रकार, हालाँकि लोहे की आधुनिक अँगीठियों से रंधन कार्य में सुविधा होती थी, पर पारंपरिक मिट्टी के चूल्हे पर पका भोजन ही तृप्तिकर माना गया। यदि आवश्यक हो, और सामर्थ्य हो तब भी अंग्रेज़ी शैली के केरोसिन स्टोव पर केवल दूध और पानी गर्म करने की रियायत दी गई, रोटी बनाने के लिए तो क़तई नहीं।

वृहद् पाक विज्ञान के अनुसार 'नीच और मलिन व्यक्ति का बनाया भोजन धर्म शास्त्रों में अखाद्य कहा गया है।' उत्तम रसोइया यदि उच्च जाति का न भी हो तो भी 'रोज़ स्नान करने वाला… शुद्धि-अशुद्धि का विचार करने वाला होना चाहिए'।[52] रसोइए के कपड़े, रसोई में विशेष उपयोग के लिए अलग रखे जाते थे।[53] साधारणतः घर और बाज़ार में पहने जाने वाले वस्त्र रसोई में वर्जित थे। छुआछूत के डर से एक सूती साड़ी या धोती आम तौर पर रसोई में ही रहती थी, और कई बार बहुत मलिन ही पहन ली जाती थी। हर पुस्तक इसे रोज़ धोने की सलाह देती है। *पाक चंद्रिका* के अनुसार रसोई केवल स्वच्छ धुले कपड़े पहन कर ही बनानी

---

[49] कार्तिक प्रसाद (1908) : 3; मणिराम शर्मा (1926) : 28*;* नरसिंह शुक्ल (1939) : 22.

[50] कार्तिक प्रसाद (1908); मणिराम शर्मा (1926) : 34.

[51] नरसिंह शुक्ल (1939) : 9-12.

[52] नरसिंह शुक्ल (1939) : 26.

[53] मणिराम शर्मा (1926) : 37.

01saumya_Layout 1 22-02-2024 15:14 Page 17

चाहिए। भोजन परोसने वाले व्यक्ति को भी सिले हुए कपड़े नहीं पहनने चाहिए, और बाहरी लोगों को दावत में खाना परोसते हुए किसी भी तरह के स्पर्श से बचना चाहिए।[54]

हिंदी पाक पुस्तकें पाक स्थान को साफ़ रखने पर भी बहुत ज़ोर देती हैं। 1908 में *पाकराज* की रसोईघर संबंधी सलाह सरल थी कि वह 'बहुत छोटा न हो, जाला-अंधेरा न हो, लिपा-पुता हो, धुआँ निकलने का पथ हो, जल गिराने का सुभीता हो, मच्छर-मक्खी न हो।'[55] यह काफ़ी रोचक है कि आम तौर पर अंग्रेज़ी पाक पुस्तिकाओं में भारतीय 'रसोईघर को एक ब्लैकहोल के रूप में, और पैंट्री को सिंक के रूप में' चित्रित किया जाता था।[56] सन् 1936 तक इस औपनिवेशिक दृष्टि को उलटते हुए, *वृहद् पाक विज्ञान* युरोपीय रसोईघरों को ही मलिन क़रार देती है। जहाँ भारतीय चौके में पकाने और खाने के स्थान साथ ही होते हैं, वहीं युरोपीय किचन और डाइनिंग हॉल एक-दूसरे से दूर बनाए जाते हैं, क्योंकि पश्चिमी परंपरा में पाक क्रिया किसी धार्मिक नियम से नहीं बँधी होती है। बक़ौल *वृहद् पाक विज्ञान,* खाना पकाने और खाना खाने के स्थान के संबंध में 'हम भारतीय युरोपीय लोगों से मीलों आगे हैं। उनकी पाकशाला बेहद गन्दी होती है। उनके बावर्चीख़ाने का प्रत्योकरण [भीतरी स्वरूप] देख कर एक प्रकार से घृणा-सी हो जाती है। यदि उसी स्थान पर भोजन भी करना पड़े, तो कदाचित ही कभी दिल गवाही दे। परिणामस्वरूप हमारे घरों के विपरीत...उनके घरों में रसोई और खाने के स्थान अलग-अलग होते हैं।'[57] मेज़ और कुर्सी पर बैठ कर भोजन करने की पश्चिमी शैली के विपरीत, भारतीय भोजन शैली को अधिक वैज्ञानिक और स्वच्छ क़रार दिया गया। खाना पकाने और खाने के स्थानों के बारे में ऐसी राय और हिदायत एक ओर स्वच्छता और सफ़ाई की पश्चिमी धारणाओं को अपनाती और स्वाभाविक बनाती है, वहीं दूसरी ओर, भारतीय रसोई के विमर्श में जाति आधारित शुद्धता-अशुद्धता की हमेशा मौजूद धारणाओं के हठ को भी कमज़ोर नहीं पड़ने देती है।

स्वच्छ रसोई – सुलक्षणा पत्नी – स्वादिष्ट भोजन – सशक्त राष्ट्र

परंपरा और आधुनिकता के बीच का लेनदेन और समझौता रसोई के जेंडर्ड स्पेस के पुनर्विन्यास में भी देखने को मिलता है। जैसा कि ज्ञात है, बीसवीं शताब्दी की शुरुआत में हिंदी सार्वजनिक क्षेत्र ने महिलाओं की शिक्षा और सार्वजनिक भागीदारी की ज़ोरदार वकालत की, हालाँकि शिक्षित और राजनीतिक रूप से सक्रिय महिलाओं के रसोई से मुँह मोड़ने का ख़तरा भी व्यापक रूप से महसूस किया जा रहा था।[58] राष्ट्रवादी प्रेस ने हमेशा घर

[54] नरसिंह शुक्ल (1939) : 27.

[55] कार्तिक प्रसाद (1908) : 2.

[56] स्टील ऐंड गार्डिनर (1909) : 1-10

[57] नरसिंह शुक्ल (1939) : 22

[58] *स्त्री दर्पण* जैसी राजनीतिक पत्रिका ने भी एक महिला पाठक, जिसके पति ने उसे असहयोग आंदोलन में भाग लेने से मना किया था, को सलाह दी कि वह घर पर ही रहे और सूत कातकर मातृभूमि के प्रति अपने दायित्व को निभाए। ओर्सीनी (2002)

01saumya_Layout 1 22-02-2024 15:14 Page 18

और बाहर के बीच संतुलन की भावना की वकालत की। ज़ाहिर है कि इस संतुलन को बनाये रखने की ज़िम्मेदारी महिलाओं के कंधे पर ही होती थी।

1920-30 के दशक से ही गांधी ने *देशसेवा* को पतिव्रत धर्म जैसे ऊँचे कर्तव्य से जोड़कर महिलाओं के लिए राजनीतिक भागीदारी की जगह तैयार की। हिंदी पट्टी की महिलाओं ने उनके आह्वान पर, घर की सीमा लाँघ कर बहिष्कार, जुलूस और धरने की राजनीति में सक्रिय भागीदारी का प्रण भी उठाया। परंतु हिंदी की व्यंजन पुस्तकों ने देशसेवा की एक अनोखी ही व्याख्या प्रस्तुत की। घर के अंदर हो या बाहर, सार्वजनिक गतिविधियों के लिए हो या महिलाओं के पारिवारिक कर्तव्यों के लिए, महिलाओं का निःस्वार्थ श्रम अब 'देश सेवा' के रूप में परिकल्पित हुआ।[59] राष्ट्र की सेवा का अर्थ न केवल राजनीतिक भागीदारी था, बल्कि राष्ट्र के पुरुषों और पुत्रों के लिए पौष्टिक, स्वादिष्ट भोजन बनाना भी हो गया। *पाक चंद्रिका* के अनुसार एक मज़बूत राष्ट्र के पुष्ट पुरुषत्व का दैनन्दिन पुनरुत्पादन महिलाओं के द्वारा अर्पित देशसेवा का उत्तमोत्तम आदर्श होगा। 'स्वच्छ रसोई – सुलक्षणा पत्नी – स्वादिष्ट भोजन – सशक्त राष्ट्र' की यह वैचारिक कड़ी सभी व्यंजन पुस्तकों में मुखर रूप से देखने को मिलती है।

जैसे-जैसे भारतीय शहरी परिवार आधुनिकीकरण की प्रक्रिया से गुज़र रहे थे, वे महिलाओं के लिए विक्टोरियाई 'नवीन स्त्री' का आदर्श अपनाते जा रहे थे। आधुनिक स्त्री को पश्चिम में 'शिक्षित पुरुष की साथी' के रूप में परिभाषित किया गया। परंतु आधुनिकता के इस आगमन काल में गृहस्थी के नए दिशा-निर्देश परंपरा की ज़मीन पर ही गढ़े गए।[60] तनिका सरकार ने उल्लेख किया है कि किस प्रकार उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध से 'स्त्री शास्त्रों और भारतीय रिवाजों से पूरी तरह बँधी थी। यह स्त्री भारत के 'स्वर्णिम अतीत की स्वतंत्रता' के साथ-साथ उभरते आधुनिक राष्ट्रवाद का प्रतीक भी बन गई।'[61] आधुनिक राष्ट्र की प्राचीन संस्कृति की वाहिका हिंदू स्त्री को नए ढंग से परिभाषित और अनुशासित किया गया। हिंदी पट्टी की पाक पुस्तकों ने अपने घेरे में रहते हुए खाना पकाने को न केवल स्त्रीत्व की एक बुनियादी विशेषता के रूप में प्रस्तुत किया, बल्कि राष्ट्र और इसकी संस्कृति के संरक्षण के लिए भी इसे आवश्यक माना। घर या राष्ट्र, दोनों का सौभाग्य और प्रसन्नता, गृहिणियों द्वारा बनाये गए भोजन पर निर्भर बना दी गई। सुलक्षणा पत्नी का प्रमुख कर्तव्य जाति-धर्म सम्मत भोजन पकाना घोषित हुआ।

चारों पुस्तकों में यह ज़ोर देकर कहा गया है कि रोज़मर्रा का भोजन प्राचीन आयुर्वेद के सिद्धांतों के अनुसार ही निर्धारित होना चाहिए। यह अनिवार्य था कि परिवार के लिए खाना बनाते समय गुण-दोष का ख़याल रखा जाए। अतः स्त्रियों के लिए अनाज, फल-सब्ज़ियों आदि की तासीर का ज्ञान आवश्यक था। आयुर्वेद में मीठा, खट्टा, नमकीन, तीखा, कड़वा

: 265.

[59] फ़्रंचेस्का ओर्सीनी (1999) : 154-156.

[60] सोनल शुक्ला (1991).

[61] तनिका सरकार (1999) : 29.

01saumya_Layout 1 22-02-2024 15:14 Page 19

और कसैला जैसे छह प्रमुख स्वाद *षट्र रस भोजन* के रूप में चिह्नित किये गए हैं, और उन्हें दैनिक आहार में शामिल किया जाना चाहिए। इसी प्रकार चबाना, पीना, चूसना, चाटना, सुड़कना और निगलना सेवन के छह तरीक़े बताए गए हैं।[62] इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि फलों और सब्ज़ियों का सेवन षड्-ऋतु के अनुसार किया जाए।[63] इसके अलावा, पाक कला में निपुण स्त्री को परिवार के विभिन्न सदस्यों के स्वाद और उनकी इच्छाओं को ध्यान में रखना चाहिए। यदि पुरुषों को घर का बना खाना मिले तो वे बाहर के खाने पर पैसे ख़र्च करने से बचेंगे और अपने स्वास्थ्य के साथ खिलवाड़ भी नहीं करेंगे। साथ ही स्त्रियों को एक दक्ष रसोइये की भाँति व्यंजन पुस्तकों में बताए गए सटीक अनुपात पर ज़्यादा ध्यान नहीं देना चाहिए, बल्कि परिवार के स्वादानुसार मसाले इत्यादि की मात्रा में फेर-बदल करना चाहिए।[64] इन सारे निर्देशों के माध्यम से *पाक चंद्रिका* सरीखी पाक पुस्तकों ने स्पष्ट रूप से इस तर्क को स्थापित करने का प्रयास किया कि भारतीय पुरुष, 'आर्य जाति' और भारतीय राष्ट्र की वर्तमान 'निर्बलता' का मुख्य कारण भोजन का अभाव न हो कर आधुनिक शहरी महिलाओं में आयुर्वेदिक सिद्धांतों की अनभिज्ञता, पाकशास्त्र की अज्ञानता और रसोई के प्रति अरुचि थी।[65] पाक-विज्ञान के नियमों की अनदेखी करते हुए अनमने ढंग से रसोई निपटाती हुई महिलाओं को 'मूर्ख और आलसी' क़रार दिया गया।[66] *देश सेवा* के इस पाक संस्करण में 'स्वादिष्ट भोजन' घर की ख़ुशी और राष्ट्रीय उत्थान, दोनों का साधन था।

बांग्ला व्यंजन पुस्तकों पर शोध करते हुए उत्सा रे ने दर्शाया है कि पाक कला की किताबों में खाना पकाने के कार्य को कला और प्रेम के भाव रूपकों से नवाज़ा गया है।[67] इसका एक परिणाम यह हुआ कि रसोई में महिलाओं के श्रम का सौंदर्यीकरण कर दिया गया। महिलाओं को क़ुदरती रसोइये के रूप में देखा जाता था। स्वादिष्ट भोजन बनाना उनके प्यार और स्नेह को दर्शाता था। हिंदी पट्टी के पाक-कला विमर्श ने एक सच्ची आर्य महिला की तुलना देवी अन्नपूर्णा से की, जो पति, पुत्रों और प्रियजनों को अपने हाथों से बना भोजन परोसते हुए अनिर्वचनीय ख़ुशी का अनुभव करती है : 'स्त्रियों के लिए नित्य नित्य नवीन नवीन क्रियाओं से पाक बना अपने प्रियजनों को खिलाना कोई सामान्य आह्लाद का विषय नहीं है... आर्य जातियों के गृह में रमणी मंडल के मध्य यह परम पवित्र भाव चिरंतन, अपार्थिव सम्पत्ति की भाँति चिरस्थायी था... पाक विद्या के प्रति अनुराग नारी जाति के रक्त मांस में मिश्रित था।'[68]

---

[62] मणिराम शर्मा (1926), 41-42, नरसिंह शुक्ल (1939) 31-32.

[63] कार्तिक प्रसाद (1908) : 10-11, नरसिंह शुक्ल (1939) : 32.

[64] मणिराम शर्मा (1926) : 6-17. गिरीश चंद्र जोशी की *आदर्श पाक विधि* भी सटीक मापों के ख़िलाफ़ सावधानी बरतने की चेतावनी देती हैं : 'जो मसाले लिखे गए हैं, वे सब हों तो बहुत अच्छा, एक आध न भी हों तो कोई बात नहीं. मसालों का जो वज़न लिखा गया है, वह भी अन्दाज़ से ही समझ लेना चाहिए. क्योंकि गृहस्ती में काँटा-तराज़ू ले कर मसाला नहीं डाला जाता', जोशी (1938) : 312.

[65] लेखक की प्रस्तावना, मणिराम शर्मा (1926) .

[66] मणिराम शर्मा (1926) : 22.

[67] उत्सा रे (2015) : 106-148.

01saumya_Layout 1 22-02-2024 15:14 Page 20

पाक चंद्रिका के अनुसार पाककला के प्रति प्रेम के कारण ही बालिकाएँ शैशव अवस्था से ही 'मिट्टी के चूल्हे,चक्की, बटलोई, करछुल, चमचा प्रभृति लेकर गार्हस्थ्य जीवन का अनुशीलन करती हैं'।[69] अस्तु आर्य कन्याओं को अपने जीवन के इस एकमात्र उद्देश्य के लिए बचपन से ही प्रशिक्षित किया जाना चाहिए। पाक विधि की हिंदी पुस्तकों में खाना पकाने की कड़ी मेहनत को समर्पण और प्रेम की भाषा में लपेट कर और रसोई में किये जाने वाले श्रम को सभ्यता और संस्कृति के नाम पर महिमामंडित करके स्वाभाविक बना दिया गया।

यह ध्यान देने योग्य है कि रसोई और रंधन में नौकरों, सेविकाओं इत्यादि के श्रम से उचित दूरी बनाये रखने की पुरज़ोर सलाह दी जाती है। महराज और महराजिनों पर रसोई का भार छोड़ने वाली धनवान पर आलसी गृहिणी हेय दृष्टि का पात्र बनती है : 'यह कितने भारी दुःख की बात है कि जिस आहार पर हमारा जीवन निर्भर करता है, उस आहार को हम दूसरों के हाथ में सौंप रखें... प्रिय माताओ, भगनियो और पुत्रियो आप लोग सावधान हो जाएँ ...किसी समय इन रसोईदारों के द्वारा जीवन से हाथ धोना पड़ता है'।[70]

तो एक आदर्श हिंदू स्त्री की दिनचर्या अलसुबह रसोई की सफ़ाई से आरम्भ होती है : यदि रसोईघर पक्के फ़र्श का है तो गरम पानी से और यदि कच्चा है तो गोबर और मिट्टी से सफ़ाई की जानी चाहिए। सभी अनाजों को तीन बार धोना, सुखाना और पीसना ज़रूरी था, पिसाई घर में ही की जानी थी। वैसे भी जो स्वाद घर में हाथ की चक्की से पिसे अनाज – विशेषतः गेहूँ के आटे – में था, वह बाज़ार की चक्की से पिसवाए गए आटे में कहाँ! सुस्वादु भोजन इस पर भी निर्भर करता है कि मसालों को उपयोग से ठीक पहले पीसा गया है या नहीं। कुछ व्यंजनों को केवल सुबह ही बनाया जा सकता था, जबकि कई व्यंजनों को बनाने में लगभग तीन दिन का समय लगता था। सुबह और शाम के भोजन पकाने के बाद के ख़ाली समय में कुशल गृहिणियों को सलाद व चटनी बनाने के निर्देश दिए गए थे। यदि दिन का हर प्रहर रसोई के किसी-न-किसी कार्य के लिए निर्धारित था, तो साल के महीने ऋतु विशेष में अचार, पापड़, बड़ी-मंगौड़ी बनाने के लिए। उपयोग में आसान अंगीठी के बजाय मिट्टी के चूल्हे पर पकाया गया भोजन ज़्यादा स्वादिष्ट और तृप्तिकर बताया गया। कहा जा सकता है कि घरेलू अन्नपूर्णा का रसोई श्रम निरंतर और अथक था। इस मध्यमवर्गीय हिंदू गृहिणी का जीवन अंग्रेज़ी मेमसाहिब के विशेषाधिकार प्राप्त जीवन से बहुत दूर था : हिंदी पट्टी की सुलक्षणा को रसोई में ख़ुद खटना था, जबकि मेमसाहिब का दायित्व अधिकतर श्रम का प्रबंधन ही होता था।[71] क्या संदेह है कि ऐसे सतत, निर्विराम परिश्रम के कारण शहरी महिलाएँ खाना पकाने के विचार से ही सिहर उठती हों और

---

[68] मणिराम शर्मा (1926) : 5.

[69] वही.

[70] मणिराम शर्मा (1926) : 21.

[71] जूडिथ वॉल्श (2004) : 113-140.

इससे दूर भागने के रास्ते खोजती हों! और कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि हिंदी पट्टी की लगभग सभी पाक-पुस्तिकाओं में आधुनिक महिलाओं की खाना पकाने से घृणा और अपने घरेलू कर्तव्यों की उपेक्षा के प्रति एक निरंतर विलाप था।

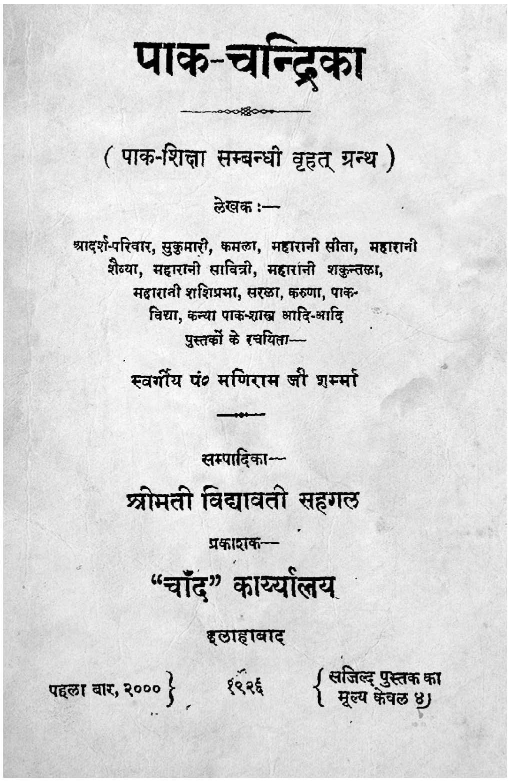

पाक-चन्द्रिका

(पाक-शिक्षा सम्बन्धी वृहत् ग्रन्थ)

लेखक :—

आदर्श-परिवार, सुकुमारी, कमला, महारानी सीता, महारानी शैव्या, महारानी सावित्री, महारानी शकुन्तला, महारानी शशिप्रभा, सरला, करुणा, पाक-विद्या, कन्या पाक-शास्त्र आदि-आदि पुस्तकों के रचयिता—

स्वर्गीय पं० मणिराम जी शर्म्मा

सम्पादिका—

श्रीमती विद्यावती सहगल

प्रकाशक—

"चाँद" कार्य्यालय

इलाहाबाद

पहला बार, २००० } १९२६ { सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल ४)

यह भी ध्यान देने योग्य है कि महिलाओं द्वारा अपने लिए भोजन पकाने और भोजन का आनंद उठाने के सन्दर्भ इन व्यंजन पुस्तकों में कहीं भी नहीं मिलते। इससे फ्रंचेस्का ओर्सीनी की इस सुसंगत टिप्पणी को बल मिलता है कि *स्त्री-उपयोगी* साहित्य ने 'स्त्रियों को स्वभावतः संकोची माना और केवल उनके कर्तव्यों की चर्चा की, कभी भी उनकी ज़रूरतों पर ध्यान नहीं दिया'।[72] बांग्ला की प्रथम जीवनी लेखिका राशसुंदरी देवी पर अपने शोध में तनिका सरकार ने मार्मिक ढंग से बताया कि कैसे इस युवा ब्राह्मण गृहिणी को, जो कम-से-कम पच्चीस लोगों के लिए हर दिन, दो पहर खाना पकाती थी, ख़ुद कभी शांत भाव से अपने पकाए व्यंजनों का स्वाद लेने का मौक़ा नहीं मिला। तनिका सरकार की मार्मिक लेखनी दर्शाती है कि कैसे इस भद्र-महिला का ख़ुद का खाना-पीना अव्यवस्थित और अनिश्चित रहता था : 'राशसुंदरी खाना पकाने और खिलाने के कर्तव्य को कठिन परिश्रम की संज्ञा देती है। इस सफल गृहिणी की जीवनी में न तो खाना पकाने के उपक्रम में किसी उत्साह की संभावना दिखती है, न प्रियजनों को खिलाने में कोई संतुष्टि और न ही यादगार व्यंजनों की सुगंध और स्वाद का वर्णन मिलता है'।[73] उच्च जातीय हिंदू रसोई परंपरा स्त्रियों के लिए एक पाश ही बन कर रह गई थी।

यह भी स्मरण रहे कि आदर्श महिलाओं का रसोई श्रम आम तौर पर भूखे पेट ही होता था। पाक चंद्रिका के अनुसार खाना पकाना एक ऐसा धार्मिक कर्तव्य है जो कि 'निराहार रह कर भक्ति और पवित्रता' के साथ निभाना चाहिए। वे 'प्रौढ़ आर्य महिलाएँ' अनुकरणीय मानी गईं 'जो जब तक घर के सब लोग भोजन नहीं कर लेते, तब तक मुँह में एक दाना नहीं डालतीं; जब सब भोक्ता गण खा चुकते हैं तब पीछे से वह जल ग्रहण करती हैं'।[74] यह स्वयं सिद्ध

[72] फ्रंचेस्का ओर्सीनी (1999) : 150.

[73] तनिका सरकार (2003) : 122.

[74] मणिराम शर्मा (1926) : 9.

01saumya_Layout 1 22-02-2024 15:14 Page 22

विडम्बना ही है कि हिंदू घरों की 'अन्नपूर्णा' अक्सर भूखी रहती थीं और उसका भूखा रहना उसे अधिक श्रद्धेय बनाता था।

घर में किसी अतिथि के अचानक आगमन से औरत को अपने हिस्से का छोटा-सा निवाला भी नसीब नहीं होता था। भारतीय रीति में अतिथि को भोजन कराना *अन्नदान* के समान था। *पाक चंद्रिका* के अनुसार प्रत्येक गृहस्थ का धार्मिक कर्तव्य है कि कोई भी अतिथि भूखा न रहे। अतः 'भारत को एक विशाल अतिथिशाला कहा जाए तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है'।[75] हालाँकि, इस न्योते के साथ-साथ यह विरोधाभास भी दर्ज किया जाता है कि देश में पाक शास्त्र की वर्तमान पतित अवस्था, पारिस्थितिकी और आयुर्वेदिक खान-पान के प्रति अनादर, स्त्रियों में रंधन कार्य के प्रति विरक्ति एवं हिंदू आदर्शों का क्षय भी विदेशियों की आमद और उनके रिवाजों के प्रभाव के कारण हुआ है : 'दुःख का विषय है कि विजातियों के आचार-व्यवहार की छाप पड़ जाने से पवित्र हिंदू जाति …की चिरप्रथा और पाक विद्या… का गौरव नष्ट हुआ जाता है।'[76] स्पष्टतः उपभोग और सहभोज के सख़्त मानदंडों के चलते भारतवर्ष नाम की इस विशाल सराय में सभी अतिथि समान रूप से आमंत्रित नहीं थे! यहाँ बाह्य विशिष्टताओं के बरअक्स हिंदी पाक पुस्तिकाओं द्वारा प्रतिपादित राष्ट्रवाद का यह पाक संस्करण आंतरिक, देशी भेदों के मद्देनज़र ख़ुद को परिभाषित करता दिखता है।[77]

उपसंहार

इन पाक पुस्तकों में रेखांकित पाक कला की दुनिया कितनी वास्तविक थी और कितनी काल्पनिक, इन सलाहों-निर्देशों के नियमन की सीमाएँ निर्धारित करना बेमानी है। भारतीय समाज की चिरस्थायी विविध प्रकृति के कारण, संभवतः ग्रंथों में उल्लिखित आहार नियमों और निषेधाज्ञाओं का पूर्णतः पालन नहीं हुआ होगा। पर यदि *पाक चंद्रिका* को हम एक पृथक, एकाकी विमर्श प्रस्तुत करता हुआ मान भी लें, तो भी हिंदी पट्टी की अन्य व्यंजन पुस्तिकाएँ, जो ऊपरी तौर पर अधिक समावेशी प्रकृति की हैं, उनमें भी इन्हीं रूमानी मानदंडों की झलक दिखती है।[78] जब-जब प्रसिद्ध रसोइयों का स्मरण किया जाता है तो उदाहरण हमेशा वैदिक ग्रंथों या महाकाव्यों से ही दिए जाते हैं। सम्पूर्ण मध्य काल के इतिहास के किसी पाक-नायक या महान ग्रन्थ का उल्लेख यहाँ नहीं है। उदाहरण के रूप में मुग़लई व्यंजनों की व्यापक स्वीकृति और प्रसिद्धि के बावजूद, *पाक-चंद्रिका* में इनका कोई भी सन्दर्भ नहीं मिलता। इन चारों पुस्तकों में जिस व्यंजन शैली का प्रयोग हुआ है वह अवध की पाक शैली के रूप में प्रसिद्ध है, लेकिन इस अवधी पहचान को स्पष्टतः अंगीकार नहीं किया गया है। व्यंजन पुस्तकों

---

[75] वही : 17.

[76] वही : 10.

[77] मिशेल टी. किंग (2019) : 9.

[78] ईशानी चौधरी (2017) : 24-39

01saumya_Layout 1 22-02-2024 15:14 Page 23

की दैनंदिन साधारणता एक ओर 'अन्यता' की प्रक्रिया को छुपाती है और दूसरी तरफ़ राष्ट्र की वांछित पहचान का निर्माण भी करती है। खाना पकाने की अन्तरंग भाषा के ज़रिए, एक नई 'जज़्बाती संरचना' और एक अंतरंग समुदाय की पुनर्रचना करती है। इन पाक-पुस्तकों की सांस्कृतिक भाषा-संहिता में मौजूदा सामाजिक पूर्वग्रह आसानी से पढ़े जा सकते हैं। *पाक-चंद्रिका* जैसी पुस्तिकाओं को एक सांस्कृतिक ढाँचे के रूप में देखा जा सकता है, जो सांस्कृतिक निर्मिति में मौजूद आतंरिक तत्त्वों की पहचान कराती हैं।[79]

औपनिवेशिक समाज अपनी 'प्रामाणिक पहचान' की खोज को लेकर लगातार चिंतित रहते हैं। उन्हें एक ऐसी पहचान की दरकार रहती है जो खाँटी देशी हो और विदेशी /औपनिवेशिक शासन द्वारा दूषित न हो। एक तरफ़ नवीन राष्ट्र के सार्वभौमिक होने की उम्मीद की जाती है, दूसरी तरफ़ यह अपेक्षा रहती है कि इसकी मूल/आंतरिक सामग्री विशिष्ट, अद्वितीय व 'स्वदेशी' भी हो।[80]

कई विद्वानों का मानना है कि 'हिंदू' नामक श्रेणी – जो स्वयं आधुनिक है – उभरते हुए राष्ट्र को इंगित करने और वैध करने के लिए रची गई; उसका किसी भी मौजूदा सामुदायिकता या क्षेत्रीयता के साथ कोई अपरिहार्य संबंध नहीं था। चूँकि 'हिंदू' शब्द की कोई स्पष्ट परिभाषा नहीं थी तो यह मुख्यतः अपने बहिष्करणों द्वारा परिभाषित किया गया; और अलग-अलग संदर्भ में नस्ल, संस्कृति, सभ्यता, जातीयता, राष्ट्रीयता या धर्म को निरूपित करने के लिए इस्तेमाल किया जाता रहा।[81] इसका अर्थ यह नहीं है कि हिंदू या आर्य शब्द के सभी उपयोग हमेशा ही 'बहिष्कारात्मक' (ज़ेनोफ़ोबिक) ही समझे गए होंगे। दरअसल, हिंदू धर्म की छत्रछाया में कला, संस्कृति और खान-पान की कई तरह की प्रथाएँ मौजूद थीं।[82] फिर भी हिंदू संस्कृति के नियमन ने – विशेषकर दैहिकता के अन्तरंग मामले में, रोज़मर्रा की आदतें और दैनिक खान-पान की पसंद के इर्दगिर्द – संभावित रूप से बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में राष्ट्र के संकीर्ण, सीमित विचार को पोषित किया। जैसा कि रेचेल बर्जर ने कहा है, व्यंजन से संबंधित इन परिचर्चाओं और रसोईघरीय संवाद ने 'प्रामाणिक स्वदेशीयता' का एक अंतर्निहित दावा किया जहाँ 'भोजन और आहार भूमि से बँधा हुआ था। वह सनातन था और इतिहास से परे भी।'[83] हिंदू राष्ट्र की यह शुद्ध शाकाहारी परिकल्पना हिंदू/भारतीय नैतिकता के साथ (रूढ़) ब्राह्मणवादी विश्वदृष्टि के सम्मिश्रण का परिणाम थी, और इसे एक अनैतिहासिक किंतु प्रभुत्वशाली आदर्श और एक विवादात्मक विमर्श के रूप में देखा जाना चाहिए, तब भी और आज भी।[84]

---

[79] ब्रायन मासुमि (2002) : 2-3.

[80] बेंजमिन ज़कारिया (2008) : 330-359.

[81] वसुधा डालमिया (1997) : 32-42.

[82] लिजी कोलिंघम (2006) : 5.

[83] रेचेल बर्जर (2013) : 17.

[84] NFHS-5 (2019-20-) के सर्वेक्षण से पता चलता है कि में भारत में 15-49 आयु वर्ग में कुल 83.4 प्रतिशत पुरुष और

01saumya_Layout 1 22-02-2024 15:14 Page 24

माइकल बिलिग ने तर्क दिया है कि राष्ट्रवाद एक लगातार मौजूद स्थिति है, जिसे प्रतिदिन रोज़मर्रा की साधारण दुनिया में पुनरुत्पादित किया जाता है।[85] रसोई और व्यंजन वास्तविक या संभावित राष्ट्र के साथ एक पहचान दिखाने और उस पर बल देने के लिए इस्तेमाल किए जाते हैं। पारंपरिक व्यंजनों और भोजन शिष्टाचार के माध्यम से, और खोई हुई परंपराओं की भावनात्मक शक्ति का सहारा लेते हुए, हिंदी पाक-पुस्तकों के निर्देश पारंपरिक भोजन के साथ-साथ नैतिक मूल्यों के संरक्षक के रूप में उभरे। यहाँ उल्लिखित रसोईघरीय सिफ़ारिशों ने एक तरीक़े से एक कल्पित हिंदू राष्ट्र को चुपचाप चिह्नित किया, जो हर गृहलक्ष्मी द्वारा रसोई में पकाया जाना चाहिए। वसुधा डालमिया ने दर्शाया है कि *इंडियन ऐन्टीक्वेरी* जैसी पत्रिकाओं ने भारत को मुख्य रूप से हिंदू समझने और स्थानीय परंपराओं तथा स्वाद को सांस्कृतिक आदर्शों से जोड़ने का उपक्रम किया।[86] अस्तु, उभरते राष्ट्र के रसोईघरीय प्रोफ़ाइल का संघटन भारत के विभिन्न राज्यों के प्रतिनिधि नमूनों से नहीं होना था और न ही उन आम व्यंजनों से जो कि विभिन्न समुदायों और जातियों द्वारा पसंद किए जाते थे। बल्कि हिंदी पट्टी की पाक पुस्तिकाएँ एक ग़ैर-मिलावटी, शुद्ध और पवित्र राष्ट्रीय पकवान परंपरा की सिफ़ारिश करती हैं, जो परिभाषा और विश्वास से शाकाहारी, उच्चजातीय और हिंदू हो। इन दैनिक, रोज़मर्रा के दोहराए जाने वाले व्यंजन विकल्पों के माध्यम से मानो भविष्य के राष्ट्र का पूर्वाभास पेश किया जा रहा हो।[87] समकालीन भारत के खाद्य संघर्ष, मतभेद और प्रतिस्पर्धा इस बात के गवाह हैं कि ख़ासकर हिंदी पट्टी में ये नुस्ख़े और निर्देश पूरी तरह से आत्मसात हो कर आदर्श बन गए हैं।

संदर्भ

अब्दुल हलीम शरर (1971), *पुराना लखनऊ (गुज़िश्ता लखनऊ)* (अनु.), नूर नबी अब्बासी, नैशनल बुक ट्रस्ट .

अर्जुन अप्पादुरई (1988), 'हाउ टू मेक ए नैशनल कुईजीन : कुकबुक्स इन कनटेम्पॅररी इंडिया', *कम्पेरेटिव स्टडीज़ इन सोसाइटी ऐंड हिस्ट्री*, 30, 1 : 3-24

आलोक राय (2001), हिंदी नैशनलिज़म, ओरिएंट ब्लैकस्वान, दिल्ली.

आत्सुको इचिजो और रॉनल्ड रैंटा (2016), फ़ूड, नैशनल आइडेंटिटी ऐंड नैशनलिज़म. फ्रॉम एवरीडे टू ग्लोबल पॉलिटिक्स, पालग्रेव मैकमिलन, न्यू यॉर्क.

आर. एस. खरे. (2004), 'अन्न', द हिन्दू वर्ल्ड (सं.) सुशील मित्तल ऐंड जेने थर्सबी, रटलेज, न्यू यॉर्क ऐंड लन्दन: https://doi.org/10.4324/9780203644706

70.6 प्रतिशत महिलाएँ मांस का सेवन करती हैं, जबकि NFHS-4 (2015-16) में पुरुषों के लिए यह आँकड़ा 78.4 प्रतिशत और महिलाओं के लिए 70 प्रतिशत था. सिर्फ़ हिंदुओं में भी 52.5% पुरुष और 40.7% महिलाएँ मांसाहारी बताई जाती हैं. देखें नैशनल फ़ैमिली हेल्थ सर्वे (एनएफ़एचएस-4) 2015-16 और नैशनल फ़ैमिली हेल्थ सर्वे (एनएफ़एचएस-5), 2019-21 भारत. मुंबई: इंटरनैशनल इंस्टिट्यूट फ़ॉर पॉपुलेशन साइंसेज़ (आईआईपीएस) ऐंड आईसीएफ 2017).

[85] माइकल बिलिग (1995) : 8.

[86] वसुधा डालमिया (2015) : 118.

[87] आत्सुको इचिजो और रॉनेल्ड रैंटा (2015) : 1-18.

01saumya_Layout 1 22-02-2024 15:14 Page 25

ई. ए. एच. ब्लंट (1969), द *कास्ट सिस्टम ऑफ़ नॉर्दर्न इंडिया (विद स्पेशल रेफरेन्स टू युनाइटेड प्रोविंसेज़ ऑफ़ आगरा ऐंड अवध),* एस चाँद ऐंड कम्पनी, दिल्ली.

ईशानी चौधरी (2017), 'अ पैलेटेबल जर्नी थ्रू द पेजेज़ : बंगाली कुकबुक्स ऐंड दि आइडियल किचन इन लेट नाइनटीन्थ ऐंड अर्ली ट्वेन्टीन्थ सेंचुरी', *ग्लोबल फ़ूड हिस्ट्री,* 3 : 1 : 24-39.

उत्सा रे (2015), *कलिनरी कल्चर इन कोलोनियल इंडिया : ए कॉस्मोपॉलिटन प्लैटर ऐंड द मिडिल-क्लास*, केम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस,दिल्ली.

उलरीके स्टार्क (2007), *ऐन एम्पायर ऑफ़ बुक्स : द नवल किशोर प्रेस ऐंड द डिफ़्यूजन ऑफ़ प्रिंटेड वर्ड इन कोलोनियल इंडिया,* परमानेंट ब्लैक, रानीखेत.

एम. के. गांधी (1949), *डायट ऐंड डायट रिफ़ॉर्म*, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद.

एम. के. गांधी (1959), द *मोरल बेसिस ऑफ़ वेजिटेरियनिज़्म*, नवजीवन मुद्रणालय, अहमदाबाद.

एल. आई. रुडोल्फ और एस. एच. रुडोल्फ (1981), 'ट्रांसफॉर्मेशन ऑफ़ काँग्रेस पार्टी : व्हाय 1980 वाज़ नॉट अ रेस्टोरेशन', *इकनॉमिक ऐंड पॉलिटिकल वीकली*, 16 : 18, मई 2 : 811-813, 815-818.

कार्तिक प्रसाद (1908), *पाकराज*, फ्रेंड ऐंड कंपनी, बनारस, मथुरा [II एडिशन].

कुमकुम रॉय (2009), द *हिस्टोरिकल डिक्शनरी ऑफ़ एनसिएंट इंडिया, हिस्टोरिकल डिक्शनरीज़ ऑफ़ एनसिएंट सिविलाइज़ेशन्स ऐंड हिस्टोरिकल एराज़*, न. 23, आईएनसी, द स्केयरक्रो प्रेस, प्लीमाउथ, युके.

के. टी. अच्चैया (1994), *इंडियन फ़ूड: ए हिस्टोरिकल कम्पैनियन*, ऑक्सफ़र्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली.

कॉलीन टेलर सेन (2015), *फीस्ट्स ऐंड फास्ट्स : ए हिस्ट्री ऑफ़ फ़ूड इन इंडिया*, रीएक्शन बुक्स, लन्दन.

गिरीश चन्द्र जोशी (1938), *आदर्श पाक विधि,* हिंदी पुस्तक एजेंसी, काशी.

चारु गुप्ता (सं.) (2012), *जेंडरिंग कोलोनियल इंडिया : रिफॉर्म्स, प्रिंट ऐंड कम्युनलिज़म*, ओरिएंट ब्लैक स्वान, नई दिल्ली.

चारु गुप्ता (2011), 'राइटिंग सेक्स ऐंड सेक्सुअलिटी : आर्काइव्ज ऑफ़ कोलोनियल नॉर्थ इंडिया', *जर्नल ऑफ़ विमेंस हिस्ट्री,* 23, 4, विंटर : 12-35.

चारु गुप्ता (2001), *सेक्सुअलटी, ऑबसिनिटी, कम्युनिटी : वीमेन, मुस्लिम्स ऐंड द हिन्दू पब्लिक इन कोलोनियल इंडिया*, परमानेंट ब्लैक, नई दिल्ली.

जयंत सेनगुप्ता (2012), 'नेशन ऑन अ प्लैटर : द कल्चर ऐंड पॉलिटिक्स ऑफ़ फ़ूड ऐंड कुजीन इन कोलोनियल बंगाल', *करीड कल्चर्स : ग्लोबलाइजेशन, फ़ूड, ऐंड साउथ एशिया*, कृष्णेंदु रे ऐंड तुलसी श्रीनिवास (सं.), यूनिवर्सिटी ऑफ़ कैलिफ़ोर्निया प्रेस, बर्कले ऐंड लॉस एंजेल्स.

जी. जे. म्युलेनबेल्ड (2000), *ए हिस्ट्री ऑफ़ इंडियन मेडिकल लिटरेचर,* वॉल्यूम II-ए, एग्बर्ट फोर्सटेन, ग्रोनिंजेंन.

जूडिथ वॉल्श (2004), *डोमेस्टीसिटी इन कोलोनियल इंडिया : व्हाट वीमेन लर्न्ड व्हेन मेन गेव एडवाइस*, रोवमन ऐंड लिटिलफील्ड पब्लिशर्स, लान्हम.

जे. हालदार (1926), *बंगाल स्वीट्स*, सेकंड एडिशन, चक्रवर्ती, चटर्जी ऐंड कम्पनी, कलकत्ता.

जोसेफ़ ऑल्टर (2000), *गांधीज़ बॉडी : सेक्स, डाइट, ऐंड द पॉलिटिक्स ऑफ़ नैशनलिज़म*, यूनिवर्सिटी ऑफ़ पेन-सिल्वेनिया प्रेस, फिलाडेल्फिया.

ज्ञानेंद्र पाण्डेय (1990), *कंस्ट्रक्शन ऑफ़ कम्युनलिज़म इन कोलोनियल नॉर्थ इंडिया*, ऑक्सफ़र्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली.

ज्ञानेश कुदैस्या (2006), *रीजन, नेशन, 'हार्टलैंड' : उत्तर प्रदेश इन इंडियाज बॉडी पॉलीटिक*, सेज सीरीज इन मॉडर्न

01saumya_Layout 1 22-02-2024 15:14 Page 26

इंडियन हिस्ट्री, सेज पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली.

डी. नटराजन (1971), एक्सट्रैक्ट्स फ्रॉम द ऑल इंडिया सेन्सस रिपोर्ट्स ऑन लिटरेसी, सेन्सस सेंटेनरी मोनोग्राफ न. 9, *सेन्सस ऑफ़ इंडिया*, 1971, ऑफिस ऑफ़ द रजिस्टरार जनरल इंडिया.

तनिका सरकार (1999), *वर्ड्स टू विन: द मेकिंग ऑफ़ अमार जीबन, ए मॉडर्न ऑटोबायोग्रफ़ी*, काली फॉर वीमेन, नई दिल्ली.

निको स्लेट (2019), *गांधी 'ज़ सर्च फॉर द परफ़ेक्ट डायट : ईटिंग विद द वर्ल्ड इन माइंड*, यूनिवर्सिटी ऑफ़ वाशिंगटन प्रेस, सीएटल.

नैशनल फैमिली हेल्थ सर्वे-4, 2015-16 (2017), इंटरनैशनल इंस्टिट्यूट फॉर पापुलेशन्स साइंसेज (आईआईपीएस) ऐंड आई सी एफ़., मुंबई.

नैशनल फैमिली हेल्थ सर्वे-5, 2019-21 (2021), इंटरनैशनल इंस्टिट्यूट फॉर पापुलेशन्स साइंसेज (आईआईपीएस) ऐंड आई सी एफ़., मुंबई.

पंडित नरसिंह शुक्ल (1939), *वृहद् पाक विज्ञान : वेजेटेरियन यानी निरामिष और आमिष*, हिंदी पुस्तकालय, मथुरा.

पंडित वामनाचार्य भट्टाचार्य (सं.) (1983), *पाक दर्पणम् (ओल्डेस्ट आयुर्वेदिक ट्रीटीज ऑफ़ होम साइंस) ऑफ़ महाराजा नल*, हिंदी कमेंटरी, डॉ. इन्द्रदेव त्रिपाठी, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी.

एफ़. ए. स्टील ऐंड जी. गार्डिनर (1909), द *कम्प्लीट इंडियन हाउसकीपर ऐंड कुक*, विल्यम हायनेमन ऐंड संज़, लंदन.

फ्रंचेस्का ओर्सीनी (1999), 'डोमेस्टीसिटी ऐंड बियॉन्ड : हिंदी विमेंस जर्नल इन द अर्ली ट्वेंटिएथ सेंचुरी' *साउथ एशिया रिसर्च*, 19 : 2 : 137-160.

फ्रंचेस्का ओर्सीनी (2002), द *हिंदी पब्लिक स्फीयर 1920-1400 : लैंग्वेज ऐंड लिटरेचर इन द एज ऑफ़ नैशन-लिज़्म*, ऑक्सफ़र्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली.

फ्रंचेस्का ओर्सीनी (2009), *प्रिंट ऐंड प्लेजर : पॉपुलर लिटरेचर ऐंड एंटरटेनिंग फिक्शन्स इन कोलोनियल नॉर्थ इंडिया*, परमानेंट ब्लैक, नई दिल्ली.

फ्रान्सिस रॉबिन्सन (1974), *सेप्रटिज़्म अमंग इंडियन मुस्लिम्स : द पॉलिटिक्स ऑफ़ द युनाइटेड प्रॉविन्सेज़ 1860-1923*, केम्ब्रिज.

बेंजामिन ज़कारिया (2008), 'रेजिडुअल नैशनलिज़्म ऐंड द इंडियन (रेडिकल?) इंटेलेक्चुअल : ऑन इंडीजेनिज़्म, अथेंटीसिटी ऐंड द कोलोनाइज़र्'स प्रेजेंट्स.' , देबराज भट्टाचार्य (सं.) *ऑफ़ मैटर्स मॉडर्न : द एक्सपीरियंस ऑफ़ मॉडर्निटी इन कोलोनियल ऐंड पोस्टकोलोनियल साउथ एशिया*, सीगल, कलकत्ता.

ब्रायन मासुमि. (2002), *पैरब्ल्स फॉर द वर्चुअल : मूवमेंट, एफेक्ट, सेंसेशन (पोस्ट-कंटेम्परारी इंटरवेंशन्स)*, ड्यूक यूनिवर्सिटी प्रेस बुक्स, डरहम ऐंड लन्दन.

मणिराम शर्मा (1926), *पाक चन्द्रिका*, चाँद प्रेस, इलाहाबाद.

माइकल बिलिग (1995), *बनाल नैशनलिज़्म*. सेज, लन्दन.

मिशेल टी. किंग (सं.) (2019), *कलिनरी नैशनलिज़्म इन एशिया*, ब्लूम्सबरी अकैडेमिक, लन्दन.

मेरेडिथ बोर्थविक (1984), द *चेंजिंग रोल ऑफ़ वीमेन इन बंगाल 1849-1905*, प्रिन्सटन यूनिवर्सिटी प्रेस.

रामनारायण रावत (2015), 'जिनीऑलजीज ऑफ़ दलित पॉलिटिकल : द ट्रांसफॉर्मेशन ऑफ़ अछूत फ्रॉम 'अन-टचेबल' इन अर्ली ट्वेंटिएथ सेंचुरी नॉर्थ इंडिया,' द *इंडियन इकॉनॉमिक ऐंड सोशल हिस्ट्री रिव्यु*, 52 : 3 : 335 : 355.

01saumya_Layout 1 22-02-2024 15:14 Page 27

रिपोर्ट ऑन द एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ़ द युनाइटेड प्रोविन्सेज़ ऑफ़ आगरा ऐंड अवध, 1926-27 (1928) और 1931-1932, गवर्नमेंट ब्रांच प्रेस, लखनऊ.

रेचल बर्जर (2013), 'बिटवीन डाइजेशन ऐंड डिजायर : जिनीऑलजि ऑफ़ फ़ूड इन नेशनलिस्ट नार्थ इंडिया', *मॉडर्न एशियन स्टडीज़*, फर्स्ट व्यू आर्टिकल (फ़रवरी) : 1622-1643.

लिज़ी कोलिंघम (2006), *करी : अ टेल ऑफ़ कुक्स ऐंड कंकरर्स*, ऑक्सफ़र्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, ऑक्सफ़र्ड.

लीला गांधी (2006), *अफेक्टिव कम्युनिटीज़ : एंटीकोलोनियल थॉट ऐंड द पॉलिटिक्स ऑफ़ फ्रेंडशिप*, परमानेंट ब्लैक, दिल्ली.

वसुधा डालमिया (1997) द *नैशनलाईजेशन ऑफ़ हिन्दू ट्रेडिशन : भारतेंदु हरिश्चंद्र ऐंड द नाइनटीन्थ सेंचुरी बनारस*, ऑक्सफ़र्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली.

वसुधा डालमिया (2015), *हिन्दू पास्ट्स : वीमेन, रिलिजन, हिस्टरीज़*. परमानेंट ब्लैक इन एसोसिएशन विद अशोका यूनिवर्सिटी, नई दिल्ली.

विलियम गोल्ड (2004), *हिन्दू नैशनलिज़्म ऐंड द लैंग्वेज ऑफ़ पॉलिटिक्स इन लेट कोलोनियल इंडिया*, केम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, केम्ब्रिज.

शोबना निझावन (2017), 'वीमेन ऐंड द नेशनलाइजेशन ऑफ़ लिटरेचर : टेक्स्ट ऐंड इमेज ऐज पैरेलल नैरेटिव्स विद मल्टीप्लाड मीनिंग इन ए हिन्दू पीरियाडिकल (1927-1941)' *जेंडर ऐंड हिस्ट्री*, 29 : 1 अप्रैल : 48-66.

शोबना निझावन (2012), *वीमेन ऐंड गर्ल्स इन द पब्लिक स्फीयर : पीरियोडिकल लिटरेचर इन कोलोनियल नॉर्थ इंडिया*, ऑक्सफ़र्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली.

सिसिल्या लेओंग-सलोबिर (2011), *फ़ूड कल्चर इन कोलोनियल एशिया: अ टेस्ट ऑफ़ एम्पायर,* रटलेज, लन्दन ऐंड न्यू यॉर्क.

सी. ए. बेली (1992), *रुलर्स, टाउन्समेन ऐंड बज़ार्स : नॉर्थ इंडियन सोसाइटी इन द एज ऑफ़ ब्रिटिश इक्सपैंशन 1770-187,* ऑक्सफ़र्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली.

सुधीर चंद्रा (2014), द *ऑप्प्रेसिव प्रेजेंट : लिटरेचर ऐंड सोशल कॉंसियसनेस इन कोलोनियल इंडिया*, रटलेज, नई दिल्ली.

सैंड्रिया बी. फ्राईटैग (1990), *कलेक्टिव एक्शन ऐंड कम्युनिटी : पब्लिक अरेनस ऐंड द एमर्जेंस ऑफ़ कम्युनलिज़म इन नॉर्थ इंडिया*, ऑक्सफ़र्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली.

सोनल शुक्ला (1991), 'कल्टीवेटिंग माइंड्स: नाइनटीन्थ सेंचुरी गुजराती विमेंस जर्नल्स', *इकनॉमिक ऐंड पॉलिटिकल वीकली*, 26 : 43, अक्टूबर 26 : WS63-WS66.

स्टुअर्ट ब्लैकबर्न ऐंड वसुधा डालमिया (सं.) (2004), *इंडियाज़ लिटरेरी हिस्ट्री, एसेज़ ऑन द नाइनटीन्थ सेंचुरी*, परमानेंट ब्लैक, नई दिल्ली.

स्टुअर्ट ब्लैकबर्न (2003), *प्रिंट, फ़ोकलोर ऐंड नैशनलिज़म*, परमानेंट ब्लैक, नई दिल्ली.

होली शेफ़र (2012), 'दम पुख़्त : अ स्यूडो-हिस्टॉरिकल क्विज़ीन', कृष्णेंदु रे और तुलसी श्रीनिवास (सं.), *करीड कल्चर्स : ग्लोबलाईज़ेशन, फ़ूड ऐंड साउथ एशिया*, यूनिवर्सिटी ऑफ़ कैलिफ़ोर्निया प्रेस, बर्कली ऐंड लॉस एंजेल्स.